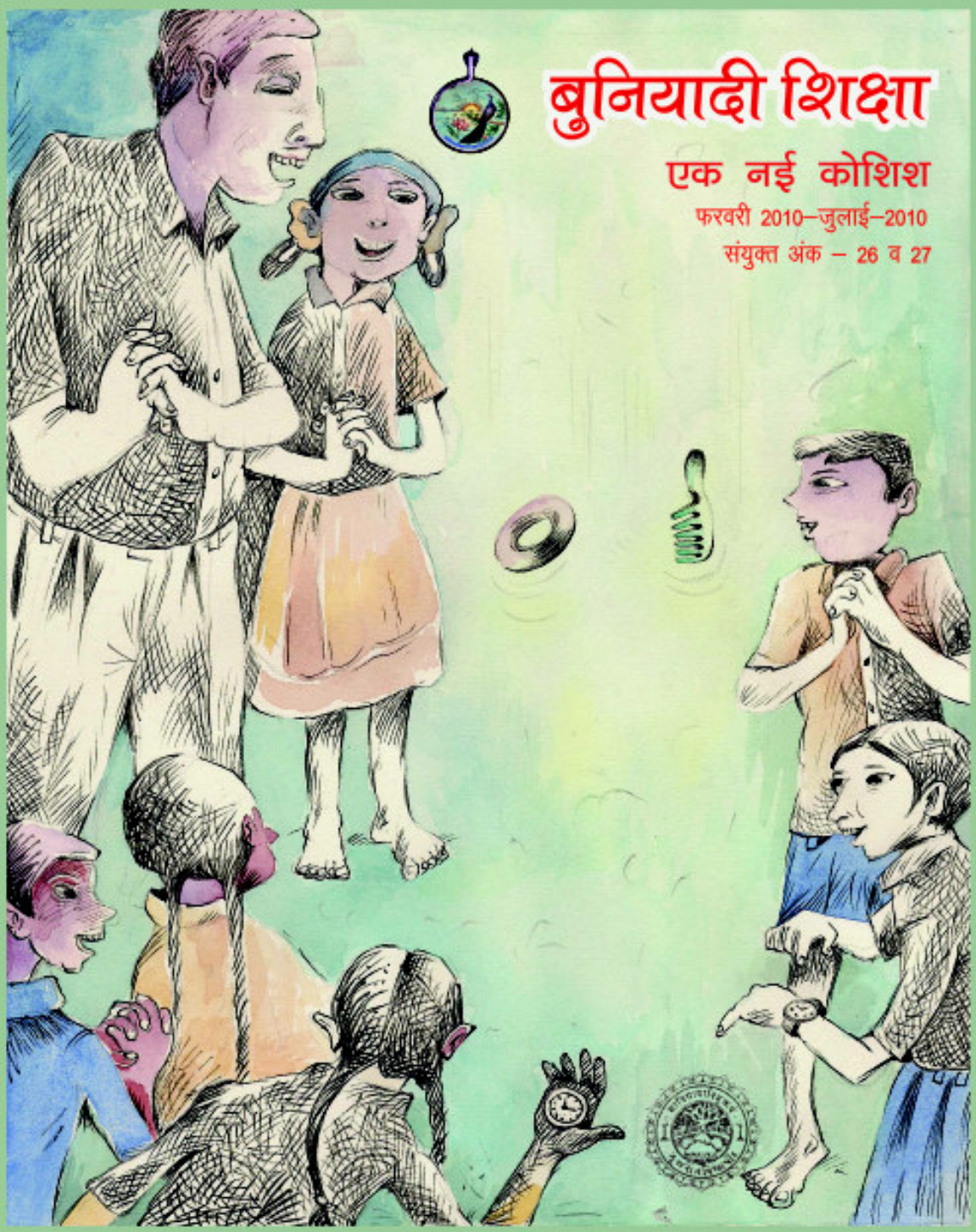

बुनियादी शिक्षा

एक नई कोशिश

फरवरी 2010–जुलाई–2010
संयुक्त अंक – 26 व 27

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

अंक–26 व 27

परामर्श
हृदय कांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

संपादक मण्डल
भागचंद्र कुमावत
वि.वि. सिंह
कुमार अनुपम

सलाहकार
एम.पी. शर्मा
गोविन्द रावल
भरत जोशी

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

कंप्यूटर सेटिंग
इसरार अहमद

टाइपिंग सहयोग
शाकिर अहमद

संपादकीय पता
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

इस अंक में

मातृभाषा के मायने **हृदय कांत दीवान**	1
शिक्षा के मायने **सुदर्शन आयंगार**	6
बुनियादी तालीम में निर्माणवाद **अनिल जैन**	8
बच्चों की समस्याएं **वि.वि. सिंह**	11
सामाजिक सरोकारों की शिक्षा **मधुभाई पंचोली 'दर्शक'**	16
जीवन की बुनियादें **मार्जरी सॉइक्स**	23
पुस्तकालय का विद्यार्थियों की भाषाई... **शहनाज़ डी.के.**	28
पिगमेलियन प्रभाव	34
मस्तमौला बचपन **अनिता मिश्रा**	36
ग्राम शिविर अध्ययन की रिपोर्ट **कुमुद पुरोहित**	41
ज्ञान की समझ बनाम भ्रम का निर्माण **पवन गुप्ता**	43
एक्सपेरिमेन्ट विद ट्रूथ **कमल महेन्दू**	46
दुनियादी शिक्षा एक नई कोशिश **भागचन्द कुमावत**	50
गुजरात में शिक्षा : एक नजरिया **ज्योतिभाई देसाई**	57

मुद्रक : संजय प्रिन्टर्स, उदयपुर

इस अंक की सहयोग राशि : 60 रुपए, वार्षिक चंदा– 120/– रुपए। चेक/ड्राफ़्ट – विद्या भवन सोसायटी के नाम से बनवाएं।

सौजन्य : राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद्, हैदराबाद

मातृभाषा के मायने

★ हृदय कांत दीवान

नवंबर 2009 में विद्या भवन में आयोजित सेमीनार का एक आधार स्तंभ था मातृभाषा में शिक्षा का अर्थ। स्कूलों में मातृभाषा में शिक्षा की बातें तो बहुत हो रही हैं मगर क्या हमारे मातृभाषा की रट लगाने भर से ही बात बन जाएगी? बेशक, प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए। मगर मातृभाषा में शिक्षा को लेकर कई सारे सवाल और समस्याएं हैं जिनके जवाब हमें ढूंढ़ना है। मसलन कि मातृभाषा में सामग्री निर्माण कैसे और कौन करे? और इससे भी बड़ा सवाल कि मातृभाषा किसे कहें?

★ विद्या भवन सोसयाटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार हैं।

अगर एक कक्षा में अलग–अलग पृष्ठभूमि और मातृभाषाओं के बच्चे हों तो फिर उस कक्षा में कौन सी मातृभाषा होगी?

इस तरह के सवालों से आगे बढ़ने पर दूसरी तरह के सवालों से जूझना होगा। आख़िर बच्चा मातृभाषा की उंगली कब तक पकड़कर चले? बच्चे को बाक़ी भाषाओं के सीखने का मौक़ा कब और कैसे मिले? जब हम कोठारी कमीशन पर नज़र डालते हैं तो उसमें त्रिभाषा फार्मूले की अनुशंसा की गई है। यानेकि मातृभाषा के अलावा और अन्य दो भाषाएं भी बच्चा सीखे। इसका अर्थ यह है कि बच्चे में एक से ज़्यादा भाषा सीखने की क्षमता होती है।

हृदय कांत दीवान ने अपने पर्चे में इन सब चिंताओं को बड़ी बारीक़ी से उभारने की कोशिश की है।

भाषा और संस्कृति सभी मनुष्यों में गहरी और निहित अवधारणाएं हैं। इनका सीधा संबंध स्वयं की छवि और आत्मसम्मान के साथ ही उस परिवार और समुदाय के प्रति सम्मान से है जिससे कि संबंधित व्यक्ति आता है। यह सत्य है कि अंग्रेज़ी की तुलना में हिन्दी हमारी दुनिया के अधिक निकट है, किन्तु यदि हम मातृभाषा की बात करते हैं तो मुद्दा अधिक कठिन हो जाता है। एक पंजाबी अथवा गुजराती व्यक्ति द्वारा हिन्दी बोलने में तथाकथित ''बोली उच्चारण'' विनोद की वस्तु बन जाता है। भाषा सीखने संबंधी आवश्यक आधार बिंदुओं को हम बिल्कुल भी स्वीकार नहीं करने और उच्चारण जैसी बातों को विशेष महत्त्व देते हैं। शुद्धता का प्रभुत्व बच्चे के भाषा विकास को अपने दमघोंटू प्रभाव से दबाए रखता है। भाषा का मुद्दा राजनैतिक कारणों से और भी जटिल बन गया है। हिन्दी अथवा अंग्रेज़ी को अति प्रभुत्व सम्पन्न भाषा मानना ऐसे ही मुद्दों का परिणाम है। एक भाषा का उपहास करना और दूसरी भाषा पर ज़ोर डालना भी उन सभी के आत्मसम्मान पर कुठाराघात है जो राजनैतिक और सामाजिक शक्ति का प्रतीक समझी जानेवाली भाषा को नहीं जानते–पहचानते।

मातृभाषा में शिक्षा का सार्थक अभिप्राय

हम सवाल यहीं से शुरू करते हैं कि मातृभाषा का अर्थ क्या है और बुनियादी शिक्षा और व्यक्ति के लिए अपनी भाषा का क्या अर्थ हो सकता है। इस चर्चा में यह सोचना है कि किसी भी इंसान की सोच, व्यक्तित्व, कार्य पद्धति और जीवन दर्शन का उसकी अंतरंग भाषा से क्या रिश्ता हो सकता है? शिक्षा में मातृभाषा का इस्तेमाल करने के क्या अर्थ हो सकते हैं और इसमें क्या सम्भावनाएं हैं और क्या रुकावटें हैं? बच्चे के क़रीब की भाषा किसे मानें इसके लिए अलग–अलग अर्थ लगाए जा सकते हैं। एक तो यह हो सकता है कि जो मां की ज़ुबान है, जिस भाषा में मां बातचीत करती है वो मातृभाषा है और वही भाषा लें। अगर हम यह बात मान लें तो यह समझना पड़ेगा कि इस बात के निहितार्थ क्या हैं? एक मूलतः तमिल परिवार जो दिल्ली में बसा है, उसके बच्चे के लिए सहज भाषा तमिल हो सकती है या दिल्ली में बोली जा सकनेवाली भाषा हो सकती है। इसलिए भाषा के चुनाव का प्रश्न बहुत सरल नहीं है। बच्चे के लिए कौन सी भाषा मातृभाषा मानें, यह भी एक मुश्किल मसला है।

भारत में विविधता है, हर तरह की विविधिता। समुदाय के स्तर पर, भाषा के स्तर पर, रहन–सहन के ढंग के स्तर पर विविधता है और हर ढंग की अपनी एक शब्दावली है, अपनी एक कार्यप्रणाली है बातचीत की। अगर हम वास्तव में बच्चे की मातृभाषा की बात करें तो बहुत सारी भाषाएं होंगी। कहीं न कहीं हमें इस बात को भी परिभाषित करना होगा कि हम किसको मातृभाषा मान रहे हैं। अगर ऐसा नहीं करेंगे तो गुजरात में मातृभाषा गुजराती, तमिलनाडु में तमिल, आन्ध्र प्रदेश में तेलगु हो जाएगी। चाहे उस प्रदेश के कर्नाटक से जुड़े बच्चे से वे कन्नड़ के क़रीब की कोई भाषा बोलते हों। राजस्थान की अगर बात हम करें तो यहां पर कुछ ऐसी भाषाएं हैं जिनको हम हिन्दी के क़रीब कह सकते हैं। कुछ भाषाएं हिन्दी के क़रीब ही नहीं है तो उन बच्चों को क्या मातृभाषा में शिक्षा मिलनी चाहिए या नहीं, यह भी एक प्रश्न है। यह सवाल इसलिए ज़रूरी है कि मातृभाषा के बारे में जब हम विचार करते हैं तो भाषा बहुत महत्त्वपूर्ण मसला है। इस प्रश्न के ऊपर हमारी अवधारणात्मक स्पष्टता होनी चाहिए कि हम मातृभाषा को क्या मान रहे हैं? यह देखना होगा कि शिक्षा के दर्शन में मातृभाषा ही क्यों? इसके पीछे क्या समझ है? इस समझ का एक पहलू यह कि जो बच्चा है वो अपने समाज का सदस्य बना रहे।

मातृभाषा में शिक्षा इसलिए कि शिक्षा बच्चे को अपने समाज के साथ जोड़े, उसे विमुख न करे। यह बात कि बच्चा अपने समाज में कुछ उत्पादक कार्य भी साथ–साथ करे। स्कूल और बच्चे मिलकर समाज में कुछ उत्पादक कार्य करें और यह भाषा की ज़रूरत को बल देता है। बच्चे को जिस भाषा में शिक्षा मिल रही है वो ऐसी होनी चाहिए जिससे अपने समुदाय में जो हो रहा है, उसके साथ संवाद कर सके। उस समुदाय के साथ जहां उसे बिक्री करनी है, जहां पर उसको किसी कारीगर से बात करनी है, वो वार्तालाप कर पाए। मातृभाषा की जो आवश्यकता है उसको अगर मानकर चलें तो ऐसा प्रतीत होता है कि मातृभाषा का आशय, जो भाषा बच्चे के आस–पास उपयोग हो रही है, जिस भाषा में बच्चा बड़ा हो रहा है, इससे है।

इस विमर्श में यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है कि आख़िर भाषा का इंसान के साथ रिश्ता क्या है? इंसान मूलतः एक प्राणी है। लेकिन वह अन्य प्राणियों से बहुत फ़र्क़ है। सभी प्राणियों एवं इंसान में जो सबसे बड़ा फ़र्क़ है वो भाषा का है। अगर इसके बारे में हम सोचेंगे तो यह सिर्फ़ संप्रेषण का मसला नहीं है, क्योंकि वह तो तात्कालिक होता है। मुझे पानी चाहिए, आपको पेन्सिल चाहिए, पंखा चला दें, बन्द कर दें। कुछ नाम है और कुछ काम है। किन्तु पंखे की अवधारणा के विकास में और पंखे को बनाने के लिए जो ज्ञान चाहिए वह ज्ञान एक पीढ़ी में हासिल नहीं किया जा सकता। इस ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाने का माध्यम भाषा है। पूरे ज्ञान को संरचित करने का माध्यम भाषा है। आपस में जब हम झगड़ा करते हैं, प्यार करते हैं, उसमें भी महसूस करनेवाला संवाद भाषा है। इसके अलावा जितने भी संवाद हम कर पाते हैं सब भाषा में हैं।

मातृभाषा माध्यम के सवाल से अधिक

भाषा हमारे जीवन का, हमारे इंसान होने का आधार है। हमारा पूरा अस्तित्व और अस्मिता भाषा से बनी है। अपनी संस्कृति से हमने जो तौर–तरीक़े सीखे हैं, जिस तरह हम व्यवहार करते हैं वो सारी संस्कृति हमने व्यवहार और भाषा के माध्यम से ही सीखी है। हमारी भाषा उस पूरी संस्कृति का मानक है जिस संस्कृति से हम हैं। आप कहीं भी चले

जाएं, किसी भी देश में चले जाएं, आपकी भाषा, आपकी ज़ुबान बोलनेवाला अगर कोई व्यक्ति मिल जाये तो उसके साथ जो अंतरंग बातचीत आप कर सकते हैं वो किसी और से नहीं कर सकते। इसलिए हमारी ज़ुबान हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। बचपन के जो दोस्त हैं उनके साथ जो आप बातचीत कर सकते हैं वो अब आप नहीं कर सकते हैं। अगर वो अभी मिल जाते हैं तो वही बातचीत उसी भाषा में, उसी शैली में करने में जो मज़ा आता है वो किसी भी ज्ञानी व्यक्ति के साथ, अभी के दोस्त के साथ नहीं आता। हमारे लिए मातृभाषा एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। हमारे लिए मातृभाषा का महत्त्व और शिक्षा का उसके साथ सम्बन्ध सिर्फ़ हिन्दी, अंग्रेज़ी तमिल, गुजराती माध्यमों का प्रश्न नहीं उससे भी बड़ा प्रश्न है। अगर हम इस सवाल को समझेंगे तो हम सही रूप से रास्ता ढूंढ़ पाएंगे। अगर हम इसको एक सीमित माध्यम का प्रश्न बना देंगे तो हम उस पूरे विचार के साथ जो मातृभाषा के साथ जुड़ा है उसके साथ अन्याय ही करेंगे।

इस समझ का स्कूल की भाषा से भी संबंध है। यदि स्कूल की भाषा में उपयोग किए जा रहे शब्द हमारे ज़ेहन में बसी भाषा से मेल खाते हैं तो हमें वह मसौदा समझने में आसानी होगी। अगर अर्थशास्त्र की अवधारणाएं बच्चों के अनुभव में शामिल मसलों से उभरेगी तो हमारे लिए उनका बुनियादी तत्त्व समझना संभव हो सकेगा। इसी तरह अन्य विषय व अन्य अवधारणाएं भी शब्दों के साथ गुंथकर ज़्यादा आसानी से हमारी अपनी बन सकती है। अगर भिन्नात्मक संख्याओं की बुनियाद ऐसे अनुभवों पर खड़ी है, जो स्वाभाविक है और जिसमें पाव, आधा, पौन, डेढ़, ढाई आदि जैसी धारणाएं शामिल हैं तो उनका व्यापक अर्थ समझना संभव हो सकता है। भाषा का महत्त्व कार्य व अध्ययन के जुड़ाव से भी है।

भाषा व अवधारणा निर्माण

शिक्षा मूलतः संवाद का माध्यम है। इंसानी विचार, हमारा विकास संवाद से ही आगे बढ़ता है। यह संवाद लोगों से हो सकता है, साहित्य से हो सकता है, पुस्तकालय से हो सकता है। प्रकृति से, अपने आपसे हो सकता है, इन सबके लिए भाषा एक बहुत महत्त्वपूर्ण माध्यम है। अगर आपको यह कल्पना करनी है कि आप अगले दो महीनों में क्या करने वाले हैं तो यह सोचिए कि अगर आपके पास भाषा नहीं होती तो क्या आप यह कल्पना कर पाते और उसे बांट पाते? आप यह भाषा के कारण कर पाते हैं। आप एक दूसरे की बात समझ पाते हैं, आप पंखे को कुर्सी से अलग कर पाते हैं और असंख्य कुर्सियों को पहचान सकते हैं। यह सब आपके पास इसलिए है क्योंकि आप उस विशेष गुण को जो कुर्सी होने के लिए आवश्यक है भाषा में व्यक्त कर सकते हैं। आप उस सब को पूरी तरह से व्यक्त भी नहीं कर सकते जो आपके पास भाषा के आधार में नहीं है। कुछ चित्र बना कर, कुछ गुण बताकर आप जो समझा पाते हैं उसका आधार भी भाषा ही है। चूंकि साथ कार्य करने में नए–नए अनुभव व नई परिस्थितियों के संदर्भ में अपने मत रखने होते हैं। अतः भाषा के नए–नए प्रयोग व शब्दों का अनेक संदर्भों में परिचय हो जाता है। यह उन अवधारणाओं की गहरी व अन्य बातों के संदर्भ में जुड़ी समझ दे पाता है।

शिक्षा में ज्ञान का निर्माण, संकलन, विमर्श और परिमार्जन किसी भी भाषा में हो सकता है। यह कोई अंग्रेज़ी या हिन्दी की बपौती नहीं है। हर भाषा समृद्ध होने की क्षमता रखती है। बशर्ते कि विमर्श उस भाषा में हो। जिस भाषा में जितना ज़्यादा संवाद होगा, विमर्श होगा वह भाषा उतनी ही समृद्ध बनेगी।

एक और महत्त्वपूर्ण बात है भाषा के लिए, वह है इंसानों का उसका प्रयोग कर पाना। जो भाषा अपने आपको लोगों को बदलने की इजाज़त देती है, जो नए विचारों, शब्दों और लोगों को अपने में शामिल करती है वह ज़्यादा ताक़तवर हो जाती है। जो भाषा बंद हो जाती है, वो मर जाती है। चाहे वह भाषा जितनी भी तथाकथित वैज्ञानिक हो। वैसे तो हर भाषा वैज्ञानिक हैं, क्योंकि हर भाषा का भाषा विज्ञान लिखा जा सकता है। लेकिन कुछ भाषाएं ज़्यादा वैज्ञानिक हैं। लोग कहते हैं कि लैटिन, ग्रीक, संस्कृत बहुत वैज्ञानिक है। ये भाषाएं वैज्ञानिक हैं, क्योंकि लोग इसको बदलने नहीं देना चाहते हैं और उसे जीने भी नहीं देना चाहते। जीने का मतलब है बदलाव। अगर भाषा को हमें ज़्यादा लोगों तक ले जाना है तो उस भाषा की शुद्धता से बड़ा प्रश्न है कि उसको कितने लोग इस्तेमाल कर पाते हैं। यह मसला शिक्षा से जुड़ा है।

हमारी कक्षाएं बच्चों की कितने प्रकार की भाषाएं अपने में समाहित कर पाती हैं, यह भी कक्षा की अवधारणात्मक समृद्धता का प्रतीक है। इसीलिए यह आवश्यक है कि कक्षा में हर भाषा के लिए और हर बच्चे के अनुभव के लिए जगह हो। उनकी बातों को सुना जाए और और ज़्यादा अभिव्यक्त करने के मौक़े दिए जाएं। ऐसी चुनौतियां मिलें जिसमें उन्हें स्वाभाविक रूप से सोचकर अपने विचारों का व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण करना पड़े।

हमारे देश में प्राथमिक शालाओं के पढ़नेवाले बच्चों का एक बड़ा तबक़ा ऐसा है जिनके घर पर बातचीत का ज़्यादा माहौल नहीं है। उनका संवाद बहुत सीमित हो सकता है। जो भाषा वे जानते हैं वे सिर्फ़ घर पर इस्तेमाल करते हैं। उनके लिए सम्पर्क भाषा को समझना भी सरल नहीं है। हमारे लिए यह अनिवार्य है कि हमारे स्कूलों में उनकी मातृभाषा की जगह हो, नहीं तो स्कूल के साथ उनका संवाद ही नहीं बन सकेगा। कई ऐसी जगह जहां कक्षाओं में दो–तीन भाषाएं बोलनेवाले बच्चे हैं और इन भाषाओं में से आधी भाषाएं वहां नियुक्त शिक्षक भी नहीं जानते। ऐसे में कक्षा में संवाद निर्मित करने का काम चुनौती भरा है।

ज़ाहिर है कि हमारे देश में बहुत सी भाषाएं हैं। हर राज्य में कई भाषाएं हैं, फिर इन सभी बच्चों को स्कूल में अपनत्व कैसे लगे? एक और सवाल कि किसी भी विषय में विमर्श व अध्ययन की सामग्री कितनी भाषाओं में उपलब्ध है। तीसरा यह भी कि जब हम इस सामग्री को अन्य भाषाओं में अनूदित करवाकर ज़्यादा लोगों तक पहुंचाना चाहें तो अनुवाद व उसकी भाषा कैसी हो?

जब तक सामग्री भारतीय भाषाओं के ग्राह्य रूप में उपलब्ध नहीं होगी तब तक यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि विमर्श भारतीय भाषाओं में हो। यह महत्त्वपूर्ण है कि लोक सुलभ स्वरूप में अध्ययन व विवेचन सामग्री भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हो और उनमें भी नए ज्ञान की सोच, सृजन व उत्पत्ति हो। ज्ञान को आत्मसात् करने में ज़्यादा लोगों की भागीदारी होगी जब उसमें ज़्यादा लोग कुछ हद तक जुड़े रहेंगे।

शिक्षा के मायने

★ सुदर्शन आयंगार

दिनांक 3 से 5 नवंबर 2009 को विद्या भवन में आयोजित सेमीनार में शिक्षा के मायने पर हनमे सार्थक चर्चा की। इस चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए सुदर्शन आयंगार ने अपने विचार व्यक्त किए।

सुदर्शन आयंगार अपने वक्तव्य में समान शिक्षा और सामाजिक सरोकारों की चर्चा करते हुए इस मसले को खोलने की कोशिश कर रहे हैं।

अक्सर समाजों में यह देखा और पाया गया है कि रोज़ कमा–खानेवाली प्रजा अपने बच्चों को शिक्षण प्रशिक्षण के उन्हीं कामों से जोड़ना चाहती है जिससे परिवार के लिए आजीविका जुटाने में मदद मिले। यह बात 1901 में प्रेचन्दजी ने बतौर शिक्षण अधिकारी के अपने समय के उच्चाधिकारी की रपट का ब्यौरा देते हुए लिखा था। और आज भी हम यही मनःस्थिति उन वर्गों के मां–बाप की पढ़ते हैं। सामाजिक सरोकार के बिना शिक्षा का ढांचा तैयार करना निपट अज्ञानी काम होगा, यह समझ में आ रहा है। सामाजिक सरोकार के केन्द्र में शिक्षा का अर्थ जीवन यापन के योग्य शिक्षण प्रशिक्षण है। इस समझ से आगे बढ़ने में ही बुद्धिमानी है। मनुष्य तथा बालक कैसे सीखते हैं, इसका शास्त्रीय ज्ञान जो मिला है और जो मिल रहा है उससे यह पता चलता है। पढ़कर, सुनकर, देखकर सीखने की तुलना में काम करते हुए सीखने में ज़्यादा आसानी होती है और दक्षता भी प्राप्त होती है। यह समझ जीवन यापन के उत्पादन, क्रियाकलापों के लिए ज़्यादा कारगर साबित हुई है। इस तरह दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक, ज़्यादातर प्रजा के लिए, बच्चों के लिए शिक्षा का मतलब उन्हें उत्पादन योग्य बनाना है ताकि वे अपने जीवनयापन के लिए सामर्थ्य हासिल कर सके। दूसरा, शिक्षा में काम सिखाने की एक पद्धति हो तो विद्यार्थी ज़्यादा मज़बूती से सीखते हैं और यह शिक्षा ज़्यादा उपयोगी साबित होती है।

शिक्षा को प्रयोगमूलक बनाना शैक्षणिक सरोकार की दृष्टि से सही है और विद्यार्थी करते हुए आसानी से सीखेगा। यह बात तो ठीक है। परन्तु अपना कौशल्य किसी विशेष उत्पादन की प्रक्रिया में ही बिताते हुए आजीविका कमा पायेगा और वो सन्तुष्ट रहेगा, इस पर सामाजिक सरोकार है कि नहीं, इसकी विमुखता का पता नहीं चलता है। शिक्षा को मात्र प्रयोगमूलक बनाना ही बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। बुनियादी या नई तालीम की शिक्षा प्रणाली की विषयवस्तु के केन्द्र में यदि समाजोपयोगी उत्पादन है तो उसे उत्पादन के सन्दर्भ में काम को समझना आवश्यक है। यह तथ्य दुनिया के कई देश समझ चुके हैं और विकसित देशों ने अपनी शिक्षा प्रणाली का विकास किया है और सफलता पाई है। परन्तु अपनी–अपनी शिक्षा की प्रणाली को लागू करते समय उनके मन में यह स्पष्टता ज़रूर थी कि वे किस प्रकार की सामाजिक, आर्थिक संस्था को और किस दिशा में सामाजिक आर्थिक विकास करना और बढ़ना चाहते हैं इस बात की उनमें स्पष्टता

★ गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के कुल नायक हैं।

थी। इस दिशा में बहुत सारे अभ्यास उपलब्ध हैं और मैं उनके विषय में ज़्यादा नहीं कहना चाहता। भारत में आज़ादी से पहले या बाद में अपने लिए कोई विशेष दृष्टि विकसित करके शिक्षा प्रणाली को उस प्रकार के ढांचे में ढालने का काम नहीं किया गया है। इसके प्रयास नहीं हुए ऐसा नहीं है। किन्तु विकास की जिस अवधारणा के साथ हम आगे बढ़े, उस अवधारणा में एक विषयवस्तु तथा एक पद्धत्ति दोनों से हम वाक़िफ़ हो चुके हैं, ऐसा समझना ज़रूरी है।

नई तालीम के सन्दर्भ में तो गांधीजी की मानव विकास की अवधारणा हिन्द स्वराज में पहले लिपिबद्ध हुई और बाद में उसकी अभिव्यक्ति समय–समय पर उन्होंने अपने विचारों से और उद्‌बोधनों से की थी। विकास सम्बन्धी विचारों का जो संकलन है, उससे यह पता चलता है कि उस विकास की अवधारणा में भारत का समाज ग्रामीण है, प्राकृतिक संसाधनों की मदद से और उसमें भी विशेषकर ज़मीन, जल तथा जंगल से जो प्राप्त हो उसके आधार पर सभी लोग रोटी, कपड़ा, मकान का उत्पादन अपने उपभोग के लिए संयम से करें, यह ही था। जहां पर तन स्वस्थ और मन उन्नत अवस्था में लगातार बढ़ता रहे ऐसे समाज में शिक्षक हृदय और बुद्धि का विकास करने में मदद करता है और उत्पादन में विद्यार्थियों को कौशल देने का काम करता है। उत्पादन एक सीमा से आगे नहीं बढ़ सकता। उत्पादन की व्यवस्था केन्द्रीकृत है। आप बहुत बड़ा उत्पादन करना चाहते हैं, इसलिए उसमें खपनेवाले माल, श्रम, पैसे की व्यवस्था और मज़दूरों की व्यवस्था और निकले हुए उत्पादन को बेचने की व्यवस्था ही मैनेजमेन्ट है।

इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समाज की अवधारणा में केन्द्रीकृत औद्योगीकरण स्थापित है, उसके शिक्षा में होनेवाले विकास को समझना ज़रूरी है। औद्योगिक शिक्षा को ही वोकेशनल ट्रेनिंग का नाम दिया गया था। जिसको हमने 1964–66 के समय में जो कमीशन बैठा, उसके तहत 66 की शिक्षा नीति बनी उसमें हमने कहा कि काम तो बहुत ज़रूरी है। पर वो काम क्या होगा? उसके ज़रिये हमने बहुत सारी आईटीआई खोल दी। इसमें जानेवाला सामान्य शाला में गधा साबित होने पर पास नहीं हो पाता था, उसके मां–बाप को कहा जाता था कि इसको धक्का मारकर आईटीआई में भेज दो। वेल्डर या लेथ मशीन का काम सीखेगा और किसी न किसी फैक्टरी में जाकर लग जायेगा।

बुनियादी शिक्षा में आगे बढ़ने की बात है, उसमें अगर हमारे पास समाज की कोई दृष्टि नहीं है तो इस दृष्टि के बिना शिक्षा की कल्पना करना और उस समाज के अनुरूप काम को देखना और उसे देखते हुए शिक्षा से जोड़ना सम्भव नहीं होगा। हमें यह पक्का करना है कि हम किस प्रकार के समाज का निर्माण करना चाहते हैं। नई तालीम और बुनियादी तालीम दोनों को मिलकर के प्रयोगमूलक शिक्षा पर ध्यान देना होगा। अभी हमें कई संघर्ष करने हैं। एक संघर्ष शिक्षा के अधिकार का है। सर्वशिक्षा अभियान से ज़्यादा ख़तरनाक़ ग़रीबी और ग़रीब की मज़ाक उड़ानेवाला कोई शैक्षणिक कार्यक्रम नहीं हो सकता। लोहिया ने कहा था रानी हो या मेहतरानी, सभी के लिए समान शिक्षा। यह ग़रीबों के लिए ग़रीब शिक्षा है, इसके सामने लड़ना है। शिक्षा का अधिकार, पूर्व प्राथमिक से 14 साल तक जो अधिकार हमको लेना है, उस अधिकार में यह पहली लड़ाई है। दूसरी लड़ाई, सरकारी विद्यालयों की है। जब तक कॉमन स्कूल नहीं होगा तब तक काम और शिक्षा की बात नहीं कर पायेंगे। ये दो बातें संघर्ष की हैं। डाईट की ओर से हम प्रयोगात्मक तरीक़े से जा सकते हैं, जहां से नई तालीम आयेगी और यह नई सम्भावना है।

बुनियादी तालीम में निर्माणवाद

★ अनिल जैन

आजकल निमार्णवाद की काफ़ी चर्चाएं हो रही हैं। बुनियादी शिक्षा में क्या हर कहीं निर्माणवाद शामिल है? इस मसले पर हमने समझने की कोशिश की। अनिल जैन ने 3–5 नवंबर के दौरान सेमीनार में बुनियादी शिक्षा और निर्माणवाद को लेकर चर्चा को नया रूप दिया है।

प्रश्न उठता है कि ज्ञान का निर्माण कहां से प्रारम्भ होता है। कैसे होता है, कौन करता है और इस पूरी प्रक्रिया में बच्चा कहां है। क्या बच्चा स्वयं उस ज्ञान के निर्माण में भागीदार है और अगर उसकी भागीदारी है तो वह भागीदारी किस रूप में है और वह कैसे सुनिश्चित की जाती है? इस पूरी संकल्पना को एक नाम दिया गया, 'निर्माणवाद' (कन्स्ट्रक्टीविज़म)। इस निर्माणवाद के पूरे आभा मंडल में हमको ढूंढ़ना होगा बुनियादी तालीम के उन सभी तत्त्वों को। सन् 1937 में नई तालीम की शिक्षा योजना के संदर्भ में गांधीजी ने कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को बड़ी सरल भाषा में प्रस्तुत किया था। गांधीजी की बुनियादी तालीम के जो तत्त्व थे, गांधीजी ने जो संकल्पना की थी उसकी निर्माणवाद की अवधारणा में और आज के निर्माणवाद के इस सिद्धान्त में कहां समानता है? यदि है तो किस रूप में है? और अगर कुछ है तो हम सब शिक्षक सीखने में कहां तक अपनी ज़िम्मेदारी निभाते हैं? इसके विश्लेषण करने की ज़रूरत है।

कई शिक्षाविदों ने अपनी बात निर्माणवाद के संन्दर्भ

★ विद्या भवन गोविन्दराम सेकसरिया शिक्षक महाविद्यालय में शिक्षण करते हैं।

में कही हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर की बात करें, चाहे चॉमस्की की बात करें। सभी शिक्षाविदों ने निर्माणवाद को अपने अपने तरीक़ों से समझने का प्रयास किया है। बुनियादी तालीम के उस मर्म को समझने की कोशिश करने की ज़रूरत है। मैं उस विचारधारा का पक्षधर हूं जिस काल, परिस्थिति, परिवेश, संस्कृति का उल्लेख करते हुए महात्मा गांधी ने बुनियादी तालीम के बिन्दुओं पर अपनी बात की थी। उन सभी बिन्दुओं को, उसकी आत्मा और उसकी मूल भावना के मर्म को हमें नहीं छोड़ना है। लेकिन बुनियादी शिक्षा के निर्माणवाद को देखते हुए आज के निर्माणवाद के सिद्धान्त पर सोचना है।

पहले हम बुनियादी तालीम के पांच सिद्धान्तों पर विचार करते हैं। पहला सिद्धान्त, 14 वर्ष तक के बालक के लिए शिक्षा, उसको हम सब स्वीकार कर रहे हैं और हमारे सभी जितने भी आयोग हैं, उन्होंने स्वीकार किया है। दूसरी, जो प्रमुख बात है मातृभाषा से शिक्षा। इस संकल्पना को बहुत व्यापक दृष्टि से समझने की आवश्यकता है। इसकी आवश्यकता निर्माणवाद की अवधारणा से भी है। तीसरी बात, जो कही गई थी, उद्यम से शिक्षा, शिक्षा की प्रक्रिया में उद्यम 'उद्योग', शब्द का भी हमें निर्माणवाद के संदर्भ में विश्लेषण करना है। चौथी बात, उन्होंने कही कि शिक्षा के प्रति समग्र दृष्टिकोण, जिसमें तीन 'एच' की बात आती है, शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की। पांचवीं बात, है स्वावलम्बन। इन 5 प्रमुख मुद्दों की बात महात्मा गांधी ने की थी। आज भी हम गांधी के इन पांचों सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से सही पाते हैं, बस फ़र्क़ है कि इनको हम किस रूप में लेते हैं। प्रश्न यह है कि वर्तमान परिदृश्य को देखने का और फिर उसको निर्माणवाद से जोड़ने का।

बुनियादी शिक्षा के इन 5 मुद्दों में से मैं 'उद्यम' और 'उद्योग' शब्द की व्याख्या करना चाहता हूं। बालक कक्षा के परिवेश में जो सीखता है उस सीखे हुए, ज्ञान को समझते हुए उसे हृदयंगम करके, जब–जब उसको जिस जिस क्षेत्र में जहां–जहां जिस रूप में आवश्यकता पड़ती है क्या उसका उपयोग करता है? यह आवश्यक नहीं है कि वह उपयोग तुरत–फुरत दिखाई पड़े। यह जो सीखा, समझा उसको आत्मसात् किया, उसको लेकर वो आगे कहीं उसका उपयोग करता है? 'उद्यम' शब्द को मैं उद्योग का दर्जा देना चाहता हूं। उद्योग से तात्पर्य किसी फैक्टरी, कारख़ाने के ऐसे कक्ष से नहीं है जहां व्यक्ति केवल अपने हाथ से ही कार्य करता है। 'निर्माणवाद' के अनुसार हाथ से किया गया कार्य मस्तिष्क के बिना सम्भव ही नहीं है। जिसने हुनर का काम सीखा है, उसने स्वयं करके देखा है और उसे समझा है। इस क्रिया में मस्तिष्क का अपना महत्त्व है और वो संरचना प्रत्येक बालक में भिन्न भिन्न रूप से बनती है। इसके बनने में उस परिवेश का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, जहां सीखने की प्रक्रिया में उसको भागीदारी सुनिश्चित करने का अवसर मिला है।

गांधीजी बुनियादी शिक्षा में यही समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि हम बच्चे को समझने की प्रक्रिया में कैसे सम्मिलित करते हैं। क्या वो स्वयं करके देख रहा है, क्या वो स्वयं अनुभव कर रहा है? अगर हमने उसकी भागीदारी सुनिश्चित की है तो वह स्वयं आगे बढ़कर, स्वयं के विवेक से उस कार्य को करने में, समझने में, अपनी भागीदारी करता है। निश्चित रूप से उसके अन्दर एक विशेष प्रकार की मानसिक संरचना का विकास होता है। वह निर्माण किसी भी रूप में हो, लेकिन उसने काम तो किया है। उसने उस ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में किसी न किसी प्रकार का उत्पादन तो किया है। यहां उत्पादन को परिभाषित करने की आवश्यकता है। मुझे नहीं लगता कि गांधीजी ने केवल उत्पादन में

मूर्त वस्तुओं के उत्पादन की ही बात की थी। उत्पादन अमूर्त भी हो सकते हैं, दिखाई नहीं पड़ेंगे। लेकिन उसने उसके उत्पादन में जो समझ बनाई है, उसे अपने मस्तिष्क में संरचित किया है और जब जब चाहा उसका उपयोग किया है तो क्या उस उत्पादन में उस बालक की भागीदारी नहीं होगी? निश्चित रूप से भागीदारी है। बुनियादी शिक्षा का तत्त्व उसमें सम्मिलित है। उत्पादन हुआ, उसके साथ श्रम हुआ और श्रम के साथ निश्चित रूप से किसी न किसी प्रकार का प्रतिफल भी हुआ। प्रतिफल किस रूप में है, वह एक अलग चर्चा का विषय है।

निर्माणवाद की संकल्पना में बुनियादी शिक्षा के तत्त्व मुझे हर स्थान पर मिलते हैं। बुनियादी शिक्षा में कल्पना की गई है कि बालक समूह में काम करता है। ऐसा करने से उसमें सहयोग की भावना और अन्य व्यक्तिगत गुणों का विकास होता है। सामाजिक पक्ष के जॉन डीवी इसी की बात करते हैं। बुनियादी शिक्षा में कहा गया है कि मेहनत करने से सृजन होता है, सृजन से चित्त को शान्ति मिलती है, उत्पादन होता है। उत्पादन वास्तविक होता है और उससे सत्य की अनुभूति होती है। निर्माणवाद में सीखने के दर्शन की मूल भावना है कि बालक को अपने परिवेश की समझ उसके अनुभव के आधार पर होती है। उसमें उसका पूर्व अनुभव सम्मिलित होता है और यह एक सक्रिय प्रविधि है। इसमें वातावरण और व्यक्ति की अन्तःक्रिया की प्रमुख आवश्यकता है। दूसरी, उसकी आधारभूत मान्यता है कि सीखना संवेदी अंगों से होता है– छूने से, आभास से, देखने से, अवलोकन करने से। और अगर हम बच्चे को यह अवसर देते हैं तो इसका अर्थ है कि कहीं न कहीं हम सीखने की प्रक्रिया में उसकी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। वह अपने अनुभव से अपनी आत्मा से समझता है। उसे सांस्कृतिक व सामाजिक वातावरण देने की आवश्यकता है। हम सामाजिक निर्माणवाद की बात करते हैं। वायगोत्स्की की बात करें तो उन्होंने भी सीखने की प्रक्रिया में बच्चे के समीपस्थ क्षेत्रों को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उस क्षेत्र में वह अपनी तात्कालिक समस्याओं का हल करके जो समझना व सीखना चाहता है उसमें वह अपनी भागीदारी सुनिश्चित करता है। इस तरह हम आगे देखें तो इस पूरी निर्माण की प्रक्रिया में बच्चा केन्द्र में है, क्योंकि निर्माण बच्चा स्वयं कर रहा है। परिवेश, वातावरण, संस्कृति, अध्यापक, पाठ्यवस्तु सब माध्यम हैं। इन सबको उचित रूप से प्रदान करने की आवश्यकता है जिसकी ज़िम्मेदारी अध्यापक की है। इस सबके होने के बाद निश्चित रूप से बच्चा निर्माण में अपनी भागीदारी पाएगा।

इस तरीक़े से निर्माण के सिद्धान्त में अगर हम कक्षाकक्ष की कल्पना करते हैं तो यह छात्र केन्द्रित, क्रिया आधारित और अन्तः क्रियात्मक है। बच्चा स्वयं ज्ञान का निर्माण कर उसे सृजित करे। सक्रियता, सहभागिता एवं रचनात्मकता को पोषित करनेवाला वातावरण हम उसको कक्षाकक्ष में देने की कोशिश करें। इस निर्माणवादी कक्षाकक्ष में ऐसा गतिशील और परिवर्तनशील वातावरण अगर उसे हम दें तो निश्चित रूप से निरन्तर आगे से आगे जिस ज्ञान को निर्मित करने की भावना के साथ बच्चा हमारे सामने उपस्थित हुआ है, वह सीखने की भागीदारी में खुद को सक्षम पायेगा। यह पूरी संकल्पना है गांधीजी की बुनियादी शिक्षा में जिसकी कल्पना की गई थी। इस अवधारणा को नए परिवेश, आज के संदर्भ में समझने की आवश्यकता है। 'उद्यम' शब्द को परिभाषित करने की आवश्यकता है। 'श्रम' शब्द को नए संदर्भ में परिभाषित करने की आवश्यकता है। कक्षाकक्ष के संदर्भ में इसका स्वरूप सुनिश्चित करें। हम निर्माणवादी बुनियादी शिक्षा का एक नया सम्प्रत्यय दुनिया के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं।

बच्चों की समस्याएं

★ वि.वि. सिंह

स्कूल में वार्षिकोत्सव की तैयारी चल रही थी, सब शिक्षक और बच्चे शाला मंच की ओर थे। रिहर्सल मंच पर होनी थी। मेरे हाथ में पुस्तकालय से इश्यू करवाई नाटक की किताब थी। अगले दिन किताब ढूंढ़ने लगी, दिमाग़ पर ज़ोर डाला तो याद आया कल स्टेज़ की तरफ़ ले गई थी, लगता है वहीं छूट गई। वैसे मैं पुस्तकों का बहुत ध्यान रखती हूं। किसी से कोई किताब या मैगज़ीन ली है तो उसे याद से वापस करना ही है। पुस्तकालय की पुस्तकें भी बहुत संभालकर रखने की मुझे आदत है। कोई नई किताब पहले–पहल इश्यू करवाने पर मैं उस पर कवर चढ़ाकर ही पढ़ती हूं। पता नहीं क्यों – मुझे दर्द होता है कि नई–नई किताब गन्दी हो जाएगी। अब बुक ही खो दी, वह नई तो नहीं थी पर मुझे मन में बहुत बुरा लगा। दो–तीन दिन बाद जाकर मैंने लाइब्रेरियन को बता दिया कि अमुक किताब मुझसे खो गई है। आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने बताया वह बुक तो किसी बच्चे ने लाकर

★ पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

यहां जमा करवा दी। विचार आया – वास्तव में पुस्तक पर किसी का नाम नहीं था, मिलनेवाले ने पुस्तकालय की छाप देखकर सही जगह पहुंचा दी। मैं अभिभूत थी।

आमतौर पर हमारे स्कूल में चोरियां नहीं होतीं पर अपवादस्वरूप कभी ऐसी शिकायतें भी आ जाती थीं। कभी–कभी किसी क्लास में इस तरह की शिकायतें बार–बार आने लगती। कभी किसी की डेस्क से किताबें ग़ायब हो गईं तो कभी बैग में रखे इन्स्ट्रूमेण्ट बॉक्स से पेन ग़ायब। बच्चे परेशान थे। एक बार कक्षा 8 जिसकी मैं दल प्रभारी नहीं थी, किन्तु रश्मि दल कक्षा 6,7,8 की छात्राओं के सम्मिलित दल की प्रभारी होने के नाते कुछ लड़कियां जो उस क्लास में थीं, दो–चार बार इस तरह की शिकायतें मुझसे कर चुकी थीं। मैंने उस क्लास में जाकर कहा 'भई' यहां तो चीज़ें खोती नहीं हैं। उपर्युक्त घटना और एक–दो अन्य घटनाएं खोई हुई चीज़ें मिलने की, मैंने उन्हें सुनाईं। शायद कक्षा में कोई एक ऐसा बच्चा होगा, संभवतः नया भी आया हो, पर सुखद आश्चर्य हुआ यह जानकर कि उसके बाद उस कक्षा में चोरियां बंद हो गईं। स्पष्ट है बच्चों को ठीक से समझाया जाए या इस तरह बात की जाए जो उन्हें प्रभावित करे या उनके दिल को छू जाए तो उनके व्यवहार में अपेक्षित सुधार या अन्तर अवश्यम्भावी है। इसके लिए ज़रूरी यह भी है कि शिक्षक का विद्यार्थियों के साथ सही तादात्म्य स्थापित हो।

सहशिक्षा में जब बच्चे–बच्चियां साथ पढते हैं, तो छिटपुट कुछ समस्याएं किशोरावस्था में आना स्वाभाविक है। किन्तु बच्चों को इस दिशा में पर्याप्त निर्देशन देना व कोई समस्या हो तो उसका निवारण आवश्यक है। मेरे दल में एक छात्रा जो पढ़ने में अच्छी थी, अन्य प्रवृत्तियों में भी उत्साह से भाग लेती थी, काफ़ी सक्रिय थी। कक्षा 6 से जूनियर रश्मि दल में मेरे साथ थी। आठवीं में पढ़ते हुए कुछ माह बीत गए थे। मैंने देखा बच्ची इस वर्ष बड़ी उदास–उदास अनमनी सी रहती। कुछ चुपचाप रहने लगी। एक दिन अकेले में उसे बुलाकर मैंने कारण पूछा। कुछ समय लगा पर बच्ची खुल गई। उसने बताया कि उसी की कक्षा में पढ़नेवाले एक छात्र ने उसे पहले पत्र लिखा था, अकेले में उनकी बातें भी होती थीं और उस छात्रा ने भी उसे दो पत्र लिखे। बाद में उसे कुछ समझ आई और उसने उससे मिलना और पत्र लिखना बंद कर दिया। अब उसे डर था कि वह छात्र, औरों को उसके पत्र न दिखा दे। कहीं बात माता–पिता तक पहुंच गई तो क्या होगा? उस छात्र का नाम सुना तो मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मैं उस कक्षा को पढ़ाती भी थी, वह छात्र उस कक्षा का लीडर था। पढ़ने में बहुत अच्छा, साथ ही अच्छा खिलाड़ी भी था।

बच्चा छात्रवृत्ति पा रहा था और इस तरह के भटकाव से उसकी उपलब्धियों पर भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। वह छात्रावासी विद्यार्थी था। एक दिन मैंने उसे छुट्टी के दिन घर बुलाया। स्कूल के पास ही शिक्षक कॉलोनी में आवास था, वह घर आ गया। मैंने उससे और कई बातें कीं। तदुपरान्त इस बारे में पूछा उसने सत्य स्वीकार कर लिया। मैंने कहा, 'क्या तुम वे पत्र मुझे दे सकते हो।' उसने कहा 'वे हॉस्टल में रखे हैं।' मैंने कहा 'तुम जाकर ले आओ मैं तुम्हारा इन्तज़ार कर रही हूं।' वह चला गया और बहुत देर तक नहीं आया। इतनी देर तो नहीं लग सकती जाकर आने में। मैंने सोचा मुझसे ग़लती हो गई मुझे स्वयं उसके साथ जाकर ले आना चाहिए था। हो सकता है वहां जाकर उसका मन बदल गया हो। पर वह आया दोनों पत्र उसने मुझे सौंप दिए। किसी से इस बात का ज़िक्र न

करने का विश्वास मैंने उसे दिलाया, साथ ही उसे प्रोत्साहित भी किया कि वह अच्छा विद्यार्थी, अच्छा खिलाड़ी, ज़िम्मेदार लीडर है, उसे अपना ध्यान रचनात्मक एवं सकारात्मक प्रवृत्तियों की ओर लगाना चाहिए।

अगले दिन वे पत्र मैंने छात्रा को दिखाकर उसके सामने ही फाड़ दिए। और कुछ दिनों में वह छात्रा सामान्य हो गई। किशोरावस्था में इस तरह की बातें हो सकती हैं। ज़रूरत है कि शिक्षक बच्चों के व्यवहार को बारीक़ी से देखें, क़रीब से जानें और तदनुकूल निदान करें। इसके लिए ज़रूरी है कि विद्यार्थियों में शिक्षक के प्रति विश्वास जागे। बच्चे खुलकर अपनी बात कह सकें, अपनी समस्या बता सकें – तभी उनको अपेक्षित मदद दी जा सकती है।

हमारे स्कूल में प्रारम्भ से ही शारीरिक दण्ड वर्जित है। बच्चों द्वारा कोई उद्दण्डता या बड़ी शरारत करने पर ज़रूरी हो तो बतौर सज़ा श्रमदान करने को कहा जाता। जैसे मेस में जाकर बर्तन साफ़ करना, खेल के मैदान से पत्थर बीनना, बरामदों में झाड़ू लगाना या फील्ड के दो या चार चक्कर लगाना। इसी संदर्भ में एक और खिड़की खोलना चाहूंगी। कक्षा 4–5 के बच्चों को नौ दिन के लिए वनशाला हेतु हम लोग माउण्ट आबू लेकर गए थे। बच्चों, शिक्षकों व अन्य कर्मचारियों आदि सबको मिलाकर लगभग 200 लोग थे। शिविर स्थल पर पानी की स्थिति को देखते हुए सीमित मात्रा में ही उपयोग की हिदायत थी। बच्चों के उपयोग के लिए कुछ दूरी पर नल थे पर जहां मेस बनाया गया था, वहां ड्रम में पानी भरकर रखा जाता था, जो मेस कर्मचारी व चपरासी बारी–बारी से भरते थे। एक दिन नहाने, कपड़े धोने के समय कुछ बच्चे दौड़ते हुए आए और दो बच्चों का नाम लेकर बोले 'वे दोनों तो कुएं में उतर गए।' सुनकर होश फ़ाख़्ता हो गये। हम दो–तीन शिक्षक दौड़ते हुए कुएं के पास पहुंचे। चौड़े कुएं के अन्दर झांका तो वे दोनों मज़े से तैर रहे थे। असल में वे दोनों बच्चे ग्रामीण परिवेश से थे और छात्रावास में रहते थे। उनको बाहर आने के लिए कहा गया। पूछताछ में पता लगा उनके गांव में कई तालाब हैं और वे अच्छे तैराक हैं। ग़लती तो बच्चों ने की थी। पहली बात बच्चों को बताए गए दायरे से बाहर न जाने के लिए कहा जाता था। दूसरी बात वे कितना अच्छा तैरना जानते हैं, क्या पता। बहुत अच्छे तैराक न होने की स्थिति में डूब भी सकते थे। फिर उनको देखकर, दूसरे बच्चे भी ऐसा कर सकते थे।

ये बच्चे जो श्रेणी प्रभारी की अनुमति के बिना कुएं तक चले गए और नीचे उतर गए, इसके लिए सज़ा देनी ज़रूरी थी। उन्हें कहा गया कि 10–10 बाल्टी पानी कुएं से खींचकर लाएं और मेस का ड्रम भरें। बच्चे अच्छे लम्बे–चौड़े, स्वस्थ थे पर कुएं से मेस की दूरी कुछ अधिक थी पर उन्होंने अपनी सज़ा पूरी की और इस तरह कर्मचारियों के काम में मदद भी हुई।

एक और मज़ेदार घटना का उल्लेख करना चाहूंगी। वनशाला में आयोजित कैम्प फायर में कुछ हल्के फुल्के आयटम्स बिना अधिक रिहर्सल या शिक्षकों द्वारा निर्देशन के ही प्रस्तुत किए जाते हैं। इसमें बच्चे शिक्षकों की नक़ल भी उतारते हैं, जिससे सभी का मनोरंजन होता है। कई बार शिक्षक भी आयटम प्रस्तुत करते हैं।

एक वनशाला में दो बच्चे ऐसे थे जिनकी खुराफ़ातें चलती रहती थीं। दूसरे बच्चों द्वारा निरन्तर उनकी शिकायतें आती रहतीं। शिक्षकों द्वारा समझाने, डांटने का उन पर कोई असर नहीं था। विद्यालय के नियमानुसार शारीरिक दण्ड वर्जित था। एक दिन

दो शिक्षकों ने मिलकर एक योजना बनाई और उन दोनों बच्चों को कहा, ''आज हम लोग कैम्प फायर में एक आयटम देंगे। तुम दोनों हमारे बेटे बनोगे। दोनों बच्चे प्रसन्न हए। रात्रि में कैम्प फायर स्थल पर दोनों शिक्षक किसान की वेश–भूषा में झगड़ते हुए उपस्थित हुए और एक–दूसरे के लड़के के ऊपर तोहमत लगाते हुए कहने लगे 'तुम्हारा लड़का हमारे खेतों में नुक़सान करता है।' दूसरे किसान की भी यही शिकायत थी। कुछ देर वाक्युद्ध चला। फिर बोले, 'क्यूं न लड़कों को ही बुलाकर पूछ लिया जाए।' हाथ पकड़कर वे उन दोनों को कैम्प फायर के घेरे में ले आए। पूछताछ चली पर लड़के क्या बोलते। पिता अपने–अपने लड़कों के हाथ पकड़कर खड़े थे। बात आगे बढ़ी तो उन्होंने एक दूसरे के लड़के की पिटाई शुरू कर दी। अचानक आई इस मुसीबत से दोनों लड़कों की सिट्टी–पिट्टी गुम हो गई। दोनों एक हाथ से अपने को बचाने की कोशिश करने लगे क्योंकि दूसरा हाथ तो उनके पिता ने कसकर पकड़ रखा था। कुछ देर पिटाई के बाद हाथ छूटने पर लड़के भाग–छूटे। बाक़ी सभी बच्चे जो आए दिन उनकी शरारतों से पीड़ित थे, हंस–हंसकर लोटपोट हो रहे थे, सबक सिखाने के इस नायाब तरीक़े को देखकर।

कुछ शरारती या उदण्ड बच्चों को सही राह पर लाने या उनकी शक्तियों अथवा ऊर्जा को सही दिशा में मोड़ने का एक आम तरीक़ा यह अपनाया जाता कि उन्हें उनकी कक्षा का लीडर बना दिया जाता। स्कूल में कक्षा नेता को बहुत ज़िम्मेदार माना जाता, वह पदेन पंचायत का सदस्य भी होता। कक्षाकक्ष को व्यवस्थित रखना, अनुशासन बनाने में पूर्ण योगदान देना विद्यार्थियों की यूनिफार्म, बाल–नाखूनों की सफ़ाई आदि का निरीक्षण, गृह कार्य या अन्य कॉपियां एकत्र करना भी उसकी कार्य सूची में सम्मिलित होता। इस तरह की ज़िम्मेदारियों के निर्वहन से उसमें एक दायित्व बोध पैदा होता, साथ ही इन सब कार्यों में दिमाग़, समय व शक्ति लगाने से शरारतों से उसका ध्यान अपने आप हट जाता।

इसमें कोई दो राय नहीं कि विद्यार्थियों के नकारात्मक व्यवहार को भी अपनी सूझबूझ से शिक्षक सही दिशा दे सकते हैं। उनकी ऊर्जा, उनकी शक्ति व दिमाग़ को सकारात्मक रचनात्मकता की ओर लगा सकते हैं।

बच्चों को सुधारने का एक तरीक़ा यह भी है। कई वर्षों पूर्व की बात है। स्कूल मेस के मैनेजर की निरन्तर शिकायत आ रही थी कि बच्चे रोटियां बाहर फेंक देते हैं। समझ में नहीं आता, रोटियां फेंक क्यों देते हैं? नहीं खाना तो न लें, कोई ज़बरदस्ती तो थाली में रखता नहीं। ख़ैर 2–4 बार एक सीनियर अध्यापक ने, जो आमतौर पर प्रार्थना के समय घोषणाएं करते थे, इस बारे में कहा भी, पर यह हरकत बंद न हुई। बच्चों को शायद खाने की क्वालिटी को लेकर शिक़ायत थी। मेस मैनेजर सुनते नहीं थे। दूसरी चीज़ें तो फेंकना मुश्किल था, रोटियां खिड़कियों से बाहर उछालकर फेंक देते। प्रिंसींपल ने अनोखा तरीक़ा अपनाया। उन्होंने धूल से सनी रोटियां एक दिन प्रार्थना सभा में मंगवाईं और चौकी पर रख दी। वह चौकी जिस पर ताज़े फूलों का गुलदस्ता रखा होता था और उसमें खोंसी जलती हुई अगरबत्तियों से धुआं निकलता होता। वह दृश्य बहुत ही अच्छा लगता। अब उसी चौकी पर रखी हुई वे सूखी रोटियां बड़ी बेमेल सी लग रही थीं। रोज़ाना के कार्यक्रम समाप्त हुए, प्रिंसीपल साहब ने खड़े होकर बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा ''ये रोटियां रोज़ तुम लोग फेंकते हो, देश में

तमाम लोग ऐसे हैं, जिन्हें खाने को नहीं मिलता और तुम लोग इस तरह उन्हें बेकार करते हो। जो बच्चे यह करते हैं, वे खड़े हो जाएं।'' कुछ क्षण मौन रहा सब उत्सुकता से देख रहे थे कि कौन खड़ा होता है। पर नहीं, कोई खड़ा नहीं हुआ। प्रिसींपल साहब फिर बोले 'जिसने भी यह किया है ख़ुद खड़े होकर स्वीकार कर लें, उसे कोई सज़ा नहीं दी जाएगी'। कोई खड़ा नहीं हुआ। वे बोले, ''तुममें से किसी ने तो यह किया ही है और तुम स्वीकार भी नहीं कर रहे हो तो ये फेंकी हुई रोटियां मैं खाता हूं। क्योंकि इस तरह रोटियों को फेंकना अन्न का अपमान है।'' सब आश्चर्य से देखते रहे, उन्होंने एक रोटी उठाई और खानी शुरू कर दी। मैं बचपन से बहुत भावुक हूं। मैं इस बात से रोमांचित और द्रवित हो उठी पर किया क्या जा सकता था। बिल्कुल शांत माहौल में सब देखते रहे उन्होंने एक रोटी खाकर ख़त्म की और दूसरी उठाकर खानी शुरू की। 5–6 रोटियां और रखी हुई थीं। अब तो बच्चे से भी नहीं रहा गया। वह खड़ा हो गया और रुआंसा होकर उसने अपना व अपने साथियों का कृत्य स्वीकार कर लिया। उसके बाद न कोई डांट, न फटकार, न कोई भाषण, बस एसेम्बली ख़त्म और सब रोज़ की तरह बाहर निकल गए। और लोगों पर इस घटना का क्या असर हुआ, बच्चों में क्या बातें हुई, टीचर्स में क्या चर्चा हुई, मुझे नहीं मालूम क्योंकि मैंने किसी से बात नहीं की। किन्तु मैं इस उद्धरण से बहुत प्रभावित हुई और वह कहीं मेरे दिल और दिमाग़ में जैसे उकेर दी गई। निश्चित ही फिर रोटियां फेंकने की पुनरावृत्ति नहीं हुई।

ज्ञानार्जन एवं अध्ययन के अतिरिक्त चरित्र एवं व्यक्तित्व निर्माण शिक्षा का बहुत बड़ा उद्देश्य है। शिक्षक इसमें पूर्ण सहयोग देकर महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। बच्चों की अन्तर्निहित क्षमताओं, योग्यताओं व रुचियों को पहचानकर उनके विकास में सहयोग दे सकता है, यही अपेक्षित भी है। 'बच्चों की कुछ समस्याएं' पुस्तक में डॉ. कालूलाल श्रीमाली कहते हैं, ''माता–पिता को छोड़कर बच्चों के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव शिक्षक का पड़ता है। शिक्षक बच्चों की मानसिक और भावनात्मक प्रवृत्तियों का सच्चा मित्र होता है। वह उनके जीवन की ग्रन्थियों को सुलझाने में भी सहायता देता है। शिक्षक अपने प्रेम से बच्चों की घृणा को प्रेम में और उनकी विनाशक प्रवृत्तियों को सृजनात्मक प्रवृत्तियों में बदल देता है। यदि शिक्षक यह सब काम नहीं करता है तो वह अपने कर्तव्य का पूरा पालन नहीं करता।''

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार ''शिक्षक की भूमिका में एक बड़ी तबदीली आई है। उसे अब तक ज्ञान के स्रोत के रूप में केन्द्रीय स्थान मिलता रहा है, वह सीखने–सिखाने की समूची प्रक्रिया का संरक्षक और प्रबंधक रहा है और पाठ्यचर्या या अन्य विभागीय आदेशों के ज़रिए सुपुर्द शैक्षणिक और प्रशासनिक ज़िम्मेदारियों को पूरा करनेवाला रहा है। अब उसकी भूमिका ज्ञान के स्रोत के बदले एक सहायक की होगी जो सूचना को ज्ञान/बोध में बदलने की प्रक्रिया में विविध उपायों से शिक्षार्थियों को उनके शैक्षणिक लक्ष्यों की पूर्ति में मदद करे।''

निःसन्देह शिक्षक को विद्यार्थी पर व्यक्तिगत ध्यान देते हुए उसके विकास में सहयोग करना है। यदि उसकी कोई समस्या है तो उसका समाधान अथवा निराकरण शिक्षक की ज़िम्मेदारी है।

सामाजिक सरोकारों की शिक्षा

★ मनुभाई पंचोली 'दर्शक'

महाभारत का एक प्रसंग है कि विदुरजी दुर्योधन के पास गए। पांडव तो वन में गए हुए थे। उसने उन्हें जुए में छल से हराया था। उनका राज्य ले लिया। दुर्योधन का नाम चारों तरफ़ गूंज रहा था। उस समय विदुरजी उसके पास गए और कहा– वत्स! तुम्हारे सामने कोई सत्य कहने का साहस नहीं

करता। सब आतंकित हैं। लेकिन तुम जो कुछ भी कर रहे हो वह ग़लत है... अधर्म है। द्रौपदी तुम्हारी भाभी है। तुम उसका चीरहरण करो तो इसे धर्म कौन कहेगा? अपने भाइयों को जुए में छल से हराना भी उचित नहीं कहा जा सकता। तुम उन्हें लाक्षागृह में जलाकर राख कर डालो तो उचित कैसे कहा जा सकता है? तुम उन्हें ज़हर दो तो क्या यह शोभनीय है?

तब दुर्योधन ने उत्तर दिया, 'काका, क्या आप यह मानते हैं कि मुझे इन बातों का पता नहीं है? क्या आप यह समझते हैं कि मैं नहीं जानता कि यह अधर्म है? अर्थात् क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं धर्म के विषय में नहीं जानता? लेकिन मुश्किल यह है कि 'जानामि धर्मम् न च मे प्रवृत्ति, जानाम्यधर्मम् न च मे निवृत्ति।' धर्म क्या है, मैं यह जानता हूं लेकिन उसकी पालना नहीं कर सकता। अधर्म क्या है मैं यह जानता हूं, लेकिन उससे मुक्त नहीं हो सकता।

हम सब आंशिक रूप से ही सही दुर्योधन हैं। स्कूल कैसे चलाना चाहिए? शिक्षा किसे कहते हैं? बालकों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिये, इन बातों से हम सर्वथा अनभिज्ञ हों ऐसा नहीं है। लेकिन हम सब दुर्योधन होने के कारण कहते हैं : 'न च मे निवृत्ति।' इस वृत्ति से मुक्त नहीं हो सकते। ऐसा क्यों है?

बापू की आस्था : बापू का स्वप्न

गांधीजी ने अपने जीवन की सांध्य वेला में विचार किया होगा और यह सत्य ढूंढ़ निकाला होगा कि मैं जिस व्यक्ति को अहिंसक बनाना चाहता हूं, जिस अहिंसक संस्कृति की स्थापना करना चाहता हूं, अगर उस अहिंसक संस्कृति की व्याख्या करनी हो तो गीता की भाषा में इस प्रकार कर सकते हैं कि लोग जिससे भयभीत न हों ऐसा व्यक्ति अर्थात् जो लोगों को आतंकित न करे, साथ ही जो लोगों से आतंकित न हो। हमें ऐसे लोगों की दुनिया रचनी है जहां प्रेम का नियम हो। इसके अतिरिक्त कोई नियम हो ही नहीं सकता। इसी बात को बाइबिल की भाषा में कहें कि जहां तलवार हो ही नहीं, उसकी दरांती बन चुकी हो।

इस प्रकार का समाज गांधीजी का स्वप्न था। वे जैसे–जैसे इस बात पर सोचते गए वैसे–वैसे उन्हें प्रतीति होती गई कि इसका एकमात्र उपाय शिक्षा ही है। कौन सी शिक्षा? यह सोचते–सोचते उन्होंने कहा कि कि वह शिक्षा अर्थात् नई तालीम! शिक्षा तो कई प्रकार की हो सकती है। वेजीटेबल घी की भांति वेजीटेबल शिक्षा भी संभव है। गांधीजी जानते थे कि शिक्षा के नाम पर बहुत असमंजस संभव है। अतः शिक्षा के उस पुराने शब्द के स्थान पर उन्होंने नया शब्द प्रयुक्त किया 'नई तालीम'। उन्होंने अपनी नई तालीम के दो–तीन लक्षण भी बतलाए।

गांधीजी ने नई तालीम देने हेतु तीन माध्यम स्वीकार किए– उद्योग, प्रकृति और समाज। गांधीजी ने ऐसा कहा तब शिक्षा का माध्यम क्या था? शिक्षा का माध्यम तो शब्द ही थे, आज भी शब्द ही हैं। फिर तब और अब के माध्यम के बीच के अंतर को समझना आवश्यक है।

संगीत में रस लेनेवाले को सबसे पहले तो यह ज्ञात होना चाहिए कि अमुक राग क्या है? हम स्वयं गा सकें अथवा न गा सकें लेकिन हमें यह पता होना चाहिए कि अमुक राग भैरवी है। यदि कोई भैरव राग गा रहा हो तो हम हाथ उठाकर कह सकें– जी यह भैरवी नहीं, भैरव है।

अतः पहले तो हमें यह निश्चित कर लेना चाहिए कि नई तालीम क्या है? नई तालीम का पहला अर्थ तो

यह है कि इसमें 'शब्द' के माध्यम की प्रमुखता नहीं होगी। 'शब्द' का माध्यम लंगड़ा है, जैसे कि व्यंजन लंगड़े हैं। अनेक बार यह माध्यम ग़लत सिद्ध होता है इसीलिए सार्थक नहीं ठहरता। अतएव शब्द के माध्यम पर विश्वास करना उचित नहीं। इसकी जगह अब माध्यम की तलाश करनी चाहिए।

स्कूल को अनुभवशाला बनाएं

शब्द का माध्यम लंगड़ा क्यों है? हम जानते हैं कि प्रत्येक शब्द किसी–न–किसी अनुभव का संकेत है, अनुभव को जगानेवाला संकेत। शब्द का अपना स्वतंत्र सामर्थ्य नहीं होता। शब्द शिक्षण की अंधी हिमायत करनेवाले भूल जाते हैं कि शब्द तो मात्र प्रतीक हैं, प्रतीक के पीछे निहित अनुभव शब्द प्रयुक्त करनेवाले के पास थोड़ा बहुत तो होना ही चाहिए। मनुष्य कल्पनाशील प्राणी होने के कारण अपनी कल्पना की सहायता से कल्पना और अनुभव के बीच की खाई को थोड़ी–बहुत तो पाट सकता है। लेकिन यदि अनुभव ही न हो तो शब्द किस काम आएंगे? जिस प्रकार दियासलाई से दीपक जगमगा उठता है उसी प्रकार अनुभव की उपस्थिति से शब्दानुभव की शक्ति कौंधने लगती है। आपकी समझ में यदि यह बात आ गई हो तो फिर शब्द का स्थान, उसकी मर्यादा आदि भी समझ में आ जाएगी। फिर आप शब्द की अंधी उपासना से मुक्त हो जाएंगे।

सर्वप्रथम तो मुझे यह कहना है कि शब्द अनुभव के प्रतीक हैं यदि हम इसे स्वीकार कर लेंगे तो हमें शिक्षण में अनुभवों का निश्चित महत्त्व ज्ञात हो जाएगा। फिर हम तुरन्त कह सकेंगे कि हमें शब्द नहीं, अनुभव दीजिए। अनुभव देने के पश्चात् अभिव्यक्ति हेतु शब्द दीजिए। पहले अनुभव, फिर शब्द! इस प्रकार शिक्षा की प्रक्रिया शुरू होगी। अब ज़रा यह भी देख लें कि वर्तमान प्रक्रिया क्या है? यह है आदि में शब्द, मध्य में शब्द और अंत में शब्द और फिर अंत में निःशब्द!... और हम मान लेते हैं कि हम शिक्षित हो गए।

एक बालक है। उसकी मां का देहान्त हो गया। तब वह बहुत छोटा था। उसकी मौसी ने लालन–पालन किया। मां जैसा ही स्नेह दिया। अब बालक स्कूल जाएगा और कविता कंठाग्र करेगा– 'जननी नी जोड़ सखी नहीं जड़े रे लोल' (मां तुल्य कोई नहीं मिल सकता।) तो उसकी आंखों के समक्ष किसकी मूर्ति साकार होगी? उसकी मौसी की आकृति ही आंखों के आगे उभरेगी न? भले ही व्याकरण की दृष्टि से जननी का अर्थ जन्म देनेवाली हो लेकिन बालक की आंखों के सामने तो मौसी ही साकार उपस्थित होगी। अनुभव के बिना शब्द और व्याकरण बलहीन होते हैं। स्कूल को अनुभवशाला बनाने की आवश्यकता है। ऐसा होने पर ही मैं आपको नई तालीम का सच्चा शिक्षक कहूंगा।

यह बात नहीं है कि यहां शब्द नहीं हैं। शब्द यहां भी होंगे। आप उसकी चिंता छोड़िए। अवसरानुकूल शब्दों के बिना मनुष्य का काम नहीं चल सकता। पारस्परिक व्यवहार और अभिव्यक्ति के लिए शब्द तो चाहिए ही चाहिए। चित्र, संगीत और शिल्प भी चाहिए। लेकिन अभिव्यक्ति हेतु कुछ सामग्री भी तो होनी चाहिए न? उसके अभाव में सम्प्रेषण क्या करेंगे? किसके साथ करेंगे? अनुभवविहीन व्यक्ति वेदशास्त्रों के अध्ययन के पश्चात् भी मूर्ख ही रहता है। उसे उस अध्ययन से कोई लाभ नहीं होनेवाला। अनुभव का अवसर देना ही नई तालीम की नई बात है। यह अनुभव बाह्य जीवन में भी मिलता है लेकिन वह व्यवस्थित रूप में नहीं मिलता। अनुभव के मिलने का विरोध नहीं है लेकिन मुश्किल यही है कि वहां वह व्यवस्थित रूप से नहीं मिलता। बालक की उम्र के अनुरूप नहीं मिलता। बालक की उम्र के

अनुरूप यह व्यवस्था घर पर भी संभव नहीं है। लेकिन हम यह कार्य स्कूल में कर सकते हैं।

गांधीजी ने इन अनुभवों को अलग–अलग वर्गीकृत किया– उद्योग का अनुभव, सामाजिक जीवन का अनुभव और आस–पास की प्रकृति का अनुभव। आप ये अनुभव दीजिए, फिर चाहें तो शब्दों अथवा संकेतों के माध्यम से शिक्षा दीजिए। समझने की बात यही है कि दूल्हे के बिना बारात शोभा नहीं देती। हमारी शिक्षा बिना दूल्हे की बारात है। इसमें व्याकरण है, अव्यय है, कृदंत है, भविष्यकाल है, भूतकाल है... कहने का आशय यह है कि सब कुछ है लेकिन मूलभूत वस्तु अनुभव नहीं है। इसीलिए गांधीजी ने कहा कि विद्यालय को इन तीन अनुभवों का केन्द्र बनाओ। ऐसा होने पर उसे उद्योग की आदत पड़ेगी, उद्योग उसे अच्छा लगने लगेगा। जो व्यक्ति उद्यमशील हैं, श्रमजीवी हैं उनके प्रति भी उसके मन में आदरभाव जागेगा। वह उन्हें आदर की दृष्टि से देखेगा।

श्रम के प्रति घृणा कैसे मिटे?

मनोविज्ञान का एक सिद्धान्त है कि जिसे हम चाहते हैं, जो कार्य हमें अच्छा लगता है, उस कार्य को करनेवाला भी हमें अच्छा लगने लगता है। यह 'ला ऑफ एसोसिएशन' है। जैसे मुझे कविता अच्छी लगती है तो उमाशंकर जोशी भी अच्छे लगते हैं। मुझे चित्रकला पसंद है इसलिए रविभाई भी पसंद हैं।

हमारे घरों की स्थिति यह है कि आज भी अधिकतर कार्य स्त्रियां करती हैं। मेरे अपने घर में पानी भरने, बर्तन साफ़ करने के अतिरिक्त अन्य अनेक कार्य मेरी बहिन करती है। ये काम पुरुषों के करने योग्य नहीं गिने जाते। औरत पांव की जूती है। इसे बदल सकते हैं... फेंक सकते हैं। ये संस्कार यहीं से उपजते हैं कि ये कार्य तो स्त्रियों के हैं और बिलकुल उपेक्षित हैं। हीन कोटि के हैं ये कार्य पुरुष नहीं करते। इन कार्यों को हेय दृष्टि से देखते हैं। इसीलिए हमारे हृदय में घृणा घर कर गयी है। फिर वही घृणा इन कार्यों को करनेवालों के प्रति व्यक्त होती है। हमारे यहां अधिकांश बुद्धिजीवी लोग श्रमजीवी लोगों के प्रति जो एक विशेष प्रकार का घृणाभाव रखते हैं उसका मूल कारण यही है।

गाड़ी में यात्रा करते समय यह दृश्य हमने अक्सर देखा होगा कि एक सीट पर कॉलेज के लड़के बैठे होते हैं और सामनेवाली सीट पर गांववाले। वहां एक बच्चे को गोद में और दो अन्य बच्चों को साथ लिए कोल जाति की महिला डिब्बे में बड़ी मुश्किल से चढ़ती है। उस समय उन विद्यार्थियों में से कोई भी खड़ा होकर यह नहीं कहता कि बहिन तुम यहां बैठ जाओ। अगले ही स्टेशन पर कॉलेज की एक लड़की हाथ में पर्स लिए आती है तो सभी कहते हैं बैठिये... बैठिये...। और हम दावा करते हैं कि हमें हिन्दुस्तान को एक बनाना है। मैं कहता हूं कि जब तक यह शिक्षा चालू रहेगी, शिक्षा में श्रम की गुंजाइश और महत्ता नहीं होगी, श्रम करनेवाले की इज़्ज़त नहीं होगी तब तक हिन्दुस्तान एक नहीं हो सकता। समाजवाद के चाहे जितने नारे लगाएं फिर भी एक नहीं हो सकता। कारण स्पष्ट है– मज़दूरी करनेवालों के प्रति आपके हृदय में सहानुभूति नहीं है। आपके और उसके बीच मेल नहीं है। उसके निकट आप नहीं हैं और आपके निकट वो! यह हिन्दुस्तान दो भागों में विभक्त है जिसे एक करने की बात भाषणों द्वारा संभव नहीं है। ''यह मेरा भारत देश है। मैं इससे प्रेम करता हूं। मैं इसके प्रति निष्ठा रखूंगा।'' यह बस पाठ्यपुस्तकों के आरम्भ में लिखने से अथवा प्रतिदिन की तोता–रटंत से यह संभव नहीं है। वस्त्रों के कहीं कोई दाग नहीं लगे इस तरह रहना पसंद करनेवाले लोग तो लोग हैं,

बाक़ी आपकी दृष्टि में कहीं ठहरते नहीं। इसमें उनका कोई दोष नहीं है। दोष है इस शिक्षा का। उन्हें सच्ची शिक्षा प्रदान ही नहीं की गई। ऐसी स्थिति में समाजवाद संभव है? सर्वोदयी होने की भावना तो आकाशी है। श्रम के आधार पर शिक्षा की संरचना होनी चाहिए। लाखों–करोड़ों श्रम करनेवालों के प्रति नई पीढ़ी के मन में श्रद्धा जागे, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए।

उद्योग कराने का नहीं स्वयं करने का विषय

दक्षिणामूर्ति में रहते हुए मैंने जाना कि लोग शिक्षकों को इतना सम्मान क्यों देते हैं। शिक्षक किसी से काम कराते नहीं हैं बल्कि काम करने की मनोवृत्ति विकसित करते हैं। तब हमारी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति से कोई अंतर नहीं पड़ता। वे तो अपना नियत कार्य करते ही हैं। उनके ऊपर निगरानी रखने की आवश्यकता नहीं होती। शिक्षक आत्मानुशासन, आत्मालोचन अथवा आत्मदर्शन द्वारा बनते हैं।

उद्योग के अप्रिय होने के अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण यह भी है कि हमने उद्योग कराने में अतिरिक्त उत्साह का परिचय दिया। उद्योग तो वस्तुतः कराने की नहीं बल्कि करने की बात है। आज सामाजिक जीवन को विद्यालय में लाने की आवश्यकता है जिसे हम 'कम्युनिटी लाइफ़' कहते हैं। यह 'कम्युनिटी लाइफ़' नई तालीम के अभाव से संभव नहीं है। हमारी वर्तमान सतही शिक्षा प्रत्येक को 'कम्युनिटी' में रहने के लिए कहती है लेकिन कम्युनिटी को साथ रखती नहीं। समाज में तो रहना ही पड़ता है। उसके बिना तो कहीं रह ही नहीं सकते। लेकिन विचारणीय यह है कि हम समाज में रहते कैसे हैं? सभी एक–दूसरे की टांग खींचने में लगे हैं। किसी प्रकार की आत्मीयता नहीं है... लगाव नहीं है। जब हम मकान बनाते हैं तब ईंटें जुड़ती हैं। लेकिन हमारी शिक्षा में तो सीमेंट जैसी कोई चीज़ ही नहीं है। यहां तो सब कुछ वैयक्तिक है। यह फर्स्ट, यह सेकेंड और यह थर्ड। यह होशियार, यह कमज़ोर और यह बुद्धू। इससे विद्यार्थी को भी यह लगने लगता है कि मेरे शिक्षक भी यही चाहते हैं कि मैं वैयक्तिक रूप से प्रगति करूं, सामाजिक रूप से आगे न बढ़ूं तब भी काम चल जाएगा। उसे कोई भी यह कहनेवाला नहीं है कि वह समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व क्यों नहीं निभा रहा है।

किसी विद्यार्थी को यदि इतिहास की किसी घटना का सन् याद नहीं है तो इससे कुछ भी बनना–बिगड़ना नहीं है। किसी को यदि दो अक्षर लिखने नहीं आते तो इसके आधार पर वह जीवन में फ़ेल नहीं होता। जीवन किसी शब्द का ग़ुलाम नहीं है। जीवन तो आत्मश्रद्धा, सामाजिकता और विनम्रता पर आधारित रहता है। जो व्यक्ति जीवन के स्वामी हैं उन्हें प्रचलित शब्दों में अपनी बात न भी कहनी आए, ऐसा संभव है। मुझे तो इतना ही कहना है कि पहले अनुभव दीजिए, फिर शब्द। अनुभव की तीन शृंखलाएं हैं– प्रकृति, सामाजिक जीवन और उद्योग।

उद्योग और कार्यानुभव (वर्क एक्सपीरियेंस) में मूलभूत अंतर है, यहां यह जान लेना भी आवश्यक है। दुनिया की तो रीति यही है कि यहां विजेताओं का यशोगान होता है। कार्यानुभव एक प्रकार की क्रिया है, लेकिन यह कर्म की श्रेणी में नहीं आता। कर्म हेतुनिष्ठ और हेतुलक्षी होता है।

एक उदाहरण देखिए। एक लड़की मेरे घर आती है। मेरी पत्नी दही बिलो रही है। वह बिलोना क्यों कर रही है, यह पूछने पर कहती है, कल मेरे पौत्र आएंगे। उन्हें मक्खन खिलाऊंगी। उसके मन में तो

यशोदा और आंखों में कृष्ण की छवि साकार हुई जा रही है। अब यह तो लड़की आई है, यह जी.बी.टी.सी. का प्रशिक्षण प्राप्त कर रही है, कहती है, ''मौसी, आप क्या कर रही हैं? मुझे वर्क एक्सपीरियेंस करना है, थोड़ा बिलोना मुझे भी करने दो न।'' मेरी पत्नी कहती है, ''लो, तुम भी बिलोना करो।'' वह जो घंटा–आधा घंटा दही मथेगी वह वर्क एक्सपीरियेंस होगा। लेकिन यह नई तालीम का उद्योग नहीं है। उद्योग की एक विशिष्ट पहचान और प्रकृति होती है। मेरी पत्नी तो जानती है कि इसमें पानी कब डालना है, कब ठंडा पानी डालना है, कब गर्म पानी डालना है, मक्खन कब ऊपर आएगा। उसे तो प्रारम्भ से लेकर अंत तक की समस्त क्रियाएं स्वयं ही करनी है। इन समस्त क्रियाओं की वह स्वामिनी है, लेकिन लड़की आई और थोड़ी–सी कसरत करके चलती बनी। उसे कुछ व्यायाम मिला... कुछ कार्यानुभव हुआ। जबकि मेरी पत्नी को अपने पौत्र–पौत्री को मक्खन खिलाते समय तो प्रसन्नता होगी अथवा बिल्ली के मक्खन खा जाने पर जो दुःख होगा वह उस ट्रेनिंग करनेवाली लड़की को तो निश्चित रूप से ही नहीं होगा।

सुनागरिकता की शिक्षा

प्रश्न यह है कि यदि आप जीवन को इस तरह समग्र रूप से देखेंगे तो हमारे जो नागरिक तैयार होंगे वे समाज के लिए उपयोगी होंगे। इतना ही नहीं बल्कि समाज का लाभ उन्हें और समाज को कैसे मिले, इसका भी ध्यान रखेंगे। इस सामाजिकता के अभाव में हम व्यक्तिगत रूप से चाहे जितने सम्पन्न क्यों न हो जाएं लेकिन अंत में तो विपन्न ही रहेंगे।

आंबला गांव की बात है। मैं घी लेने कणाबी के यहां गया। मैंने पूछा, ''घी क्या भाव है?'' उसने उत्तर दिया, ''यदि आपको अपने घर के लिए चाहिए तो बारह आने सेर और संस्था के लिए चाहिए तो चौदह आने सेर।'' (यह वर्षों पहले का एक दृष्टांत है)। मैंने उसे संस्था के लिए रियायती दाम लगाने के लिए कहा तो उसने मुझे पागल समझा। उसने कहा, ''मनु भाई, अगर संस्था से मुझे दो पैसे ज़्यादा मिलते हैं तो आपके घर का क्या जाता है? आपको तो कुछ फ़ायदा कर ही दूंगी।''

उस बहिन को सामाजिक अनुबन्ध का परिचय नहीं है। उसे कम्युनिटी लाइफ़ का सच्चा अनुभव नहीं है। उसकी कम्युनिटी उसके परिवार तक ही सीमित है। जबकि हम यह अपेक्षा करते हैं कि हमारी कम्युनिटी अर्थात् पूरा भारत! अब तो यहां तक कह रहे हैं– जय जगत्।

आप इन लड़कों में सामाजिक मनोवृत्ति विकसित नहीं कर पाते इसीलिए ये समाजद्रोही अथाव समाजविमुख बन जाते हैं। यदि आप अपने विद्यालय में सामाजिक जीवन के उत्तरदायित्व का जितना भी निर्वाह संभव हो साझे रूप में निभाने का प्रयास करें तो आगे चलकर वह समाज का अभिन्न अंग बन जाएगा। हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी समस्या यह है कि समाज में रहते हुए समाज को डंडी मारनी है।

हमारे यहां दो कहावतें प्रचलित हैं। कहावतों में सामाजिक जीवन के अनुभव का निचोड़ होता है। पहली कहावत है– पंच की भैंस के कीड़े पड़ें। मेरी अपनी भैंस हो तो उसकी देखरेख संभव है। लेकिन पंच की भैंस को कोई और नहीं संभालता तो मैं क्यों संभालूं। और जब तक उसके कीड़े नहीं पड़ जाते तब तक कोई उधर देखता ही नहीं।

ऐसी ही एक दूसरी कहावत है– साझे की सास के मरने पर संवेदना व्यक्त करने आनेवालों को घूरे पर

बैठना पड़ता है। चार–पांच बहुओंवाली सास के मरने पर यही होता है। शोक–संवेदना व्यक्त करनेवालों को कोई जगह देता ही नहीं। जिसके भी यहां जाओ, एक ही बात सुनने को मिलती है– ''बड़ी बहू के यहां जाओ। वह कोई मेरी अकेली की सास थोड़े ही थी।'' और अंत में लोगों को घूरे पर जाकर बैठना पड़ता है। हम कितने आत्मकेन्द्रित और संकुचित मनोवृत्तिवाले थे। मैं मानता हूं कि ऐसी घटनाएं बहुत अधिक नहीं हुई होंगी, फिर भी कुछ तो हुई ही होंगी तभी तो ये कहावतें बनी होंगी।

हमारी समस्या यह है कि हम एक तरफ़ तो समाज को संगठित करने का दावा करते हैं लेकिन दूसरी तरफ़ ऐसे संस्कार प्रदान करते हैं जिससे समाज छिन्न–भिन्न हो। हमारी दुर्बलताएं यहीं से उपजी हैं। अतः इसका उपचार यही है कि सामाजिक जीवन को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए। विद्यालय की प्रार्थना, सफ़ाई, उत्सव, उद्यान, प्रवास, अपने हाथों से खाना–पकाना– ये समस्त कार्यकलाप सामाजिक जीवन की शिक्षा के अंग हैं। जैसे– इतिहास, भूगोल और गणित उसके भाग हैं उसी तरह यह भी एक भाग होना चाहिए।

नई तालीम का तीसरा माध्यम है प्रकृति। हमें अपने आस–पास के परिवेश में से ही शिक्षा तलाशनी चाहिए। आस–पास मिट्टी हो तो मिट्टी से विज्ञान सिखाना चाहिए। आस–पास समुद्र हो तो समुद्र के आधार पर विज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए। विज्ञान तो हर वस्तु में छिपा है। विज्ञान की तरफ़ आकर्षित होने के लिए अमेरिका नहीं जाना पड़ता। विज्ञान का अर्थ तो कार्य–कारण बुद्धि का विकास करना है। हमारे आस–पास का परिवेश ही शिक्षा का माध्यम बनना चाहिये। प्रकृति के संवर्धन और संरक्षण की दृष्टि से यह आवश्यक है।

यह सहसंबंध कैसे स्थापित किया जाए? हमें यह बताना है कि समाज में अमीर और ग़रीब है, ऊंच–नीच का भेद कैसे है? ग्राम्य–जीवन में व्याप्त विषमता का परिचय देना है।

गर्मियों के दिन थे। दोपहर के दो बजे थे। विद्यालय शुरू हुआ तब मैंने विद्यार्थियों से अपनी–अपनी चप्पलें लाने को कहा। कक्षा में पन्द्रह विद्यार्थी थे। उनमें से पांच के पास चप्पलें ही नहीं थीं। उन्होंने वे ही जूते पहन रखे तो जो ईश्वर ने पहनाए थे। शेष दस में से कुछ ऐसे थे कि जिनके दोनों पांवों में अलग–अलग रंग की चप्पलें थीं। एक–दो विद्यार्थियों की चप्पलें अच्छी थीं। फिर मैंने उनसे पिता का नाम पूछा। यह जानकारी भी प्राप्त की कि किसके पास कितनी ज़मीन है। इससे मुझे यह ज्ञात हुआ कि ज़मीन और जूतों के बीच गहरा संबध हैं। इस सहसंबंध से यह ज्ञात हुआ कि गांव में सम्पत्ति का वितरण असमान है। इतना ज्ञात होते ही पाठ सजीव हो जाएगा। हम शिक्षकों का एक दायित्व शब्दों और संकेतों का इन माध्यमों के द्वारा उन्हें सार्थकता प्रदान करना है।

★ राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित 'शिविरा' से साभार ।

जीवन की बुनियादें

★ मार्जरी सॉइक्स

नयी तालीम के सिद्धान्तों को प्रयोग में लाने के प्रयत्न के लिए उन्हें चार मुद्दों में बताया जा सकता है।

1. बुनियादी तालीम का केन्द्र

बालक जिस दुनिया में रहते हैं उसे समझना चाहते हैं, उसमें अपना स्थान खोजना चाहते हैं, यह उनकी स्वाभाविक दिलचस्पी दिखाई देती है। बच्चों की सीखने, बनाने और पारिवारिक कामों में सहयोग देने की आन्तरिक भावना उनकी मनपसन्द आदतों में शामिल होती है। पांच–छह साल का बालक ज़िन्दे पौधों, प्राणियों और खुद काम में ला सके, ऐसे सब प्रकार की निर्जीव वस्तुओं में रस लेता है। वह पिता–माता, भाई–बहन, हमउम्रवालों और अन्य लोगों में रस लेता है। कोई चीज़ कैसे बनती है उसको समझने, सफ़ाई करने, रसोई बनाने, बर्तन मांजने, हल चलाने, मछली पकड़ने, कपड़े बुनने, कुम्हार का चाक घुमाने, आदि कामों में बच्चों की गहरी रुचि होती है। छोटे बच्चे बड़े लोगों की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों का अनुकरण अपने खेल में करते हैं। चीज़ें बनाने और उत्पादन करने की उनकी चाह, सामाजिक काम में शामिल होने की लालसा तथा चीज़ों को उपयोग में लाने के तरीक़े सीखने के लिए वे सदा उत्सुक रहते हैं और उन्हें ख़ुशी होती है। बालकों को शिक्षा और उनकी विविध शक्तियों के विकास में उनका स्वाभाविक रस हो और वह उनकी प्रवृत्तियों का आधार रूप हो सके इसके लिए बुनियादी तालीम की विविध श्रेणियों में साधारण ज्ञान की सूचना होती है। उन्हें गिनती करना, हिसाब करना आदि गणित की प्रक्रिया सिखायी जाती है। पढ़ने–लिखने का व्यावहारिक उपयोग है, यह बच्चों के मन में स्पष्ट होता है। कपास, अनाज, शाक–भाजी आदि का वज़न करना पड़ता है। उनका प्रभाव देखना पड़ता है।

दाम निश्चित करने होते हैं। लाभ–हानि का हिसाब रखना पड़ता है, तख़्ते के क़द (आकार) के अनुसार उसे चीरना पड़ता है। मकान की योजना बनानी पड़ती है। जब बागवानी और खेती गम्भीरता से करने लगते हैं तब ज़मीन और उसके प्रकार, पौधों की सब अवस्था, किसान के शत्रु–मित्र, पक्षी और कीड़े, सरसामान की संभाल और ऋतुओं व महीनों की विशेषता संबंधी कुछ सीखने का काम अत्यावश्यक व्यावहारिक महत्त्व का होता है। फ़सल को खाद देना, घर की योजना बनाना, आदि वैज्ञानिक भावना से किये जायें तो शानदार आनन्द का बहुत विशाल क्षेत्र खुल सकता है। उसका अर्थ यह नहीं है कि बाहर के वैज्ञानिक शब्दों का बहुत प्रवेश हो, पर इसका अर्थ यह है कि बालकों की विषय में रुचि बढ़ाने के लिए प्रयोग करने, उस विषय पर विचार करने, कारण और उसके असर की बुद्धि से समझने के लिए उत्साहित किये जाने चाहिए।

2. बुनियादी तालीम जीवन–प्रेरक है

शिक्षण–सिद्धान्त और उसकी पद्धति की परिभाषा हर किताब में मिलती है कि वास्तविक शिक्षा यानी बालकों में छिपी अविकसित शक्तियों को बाहर लाना ही पढ़ाई का उद्देश्य होना चाहिए। हमें यह नहीं सोचना है कि विद्यार्थी का दिमाग़ केवल संदूक है, उसमें जानकारी की दृष्टि से अच्छी तरह लिखी पुस्तक व्यवस्थित रूप से भरना है। फिर भी हमारी अधिकतम पाठशालाएं अपने विद्यार्थियों में इस प्रकार की शाब्दिक जानकारी भर देती हैं और उस जानकारी की परीक्षा में दोहराने की विद्यार्थी की शक्ति के अनुसार अपनी सफलता मानती है। हम सोचते नहीं कि क्या विद्यार्थी अपने मन से भी कोई काम कर सकते हैं? कुछ सोच सकते हैं? या वे केवल प्रश्न के एक पहलू को ही पकड़कर चलते हैं? सीखे हुए सिद्धान्तों का उपयोग नयी परिस्थिति में वे कर सकते हैं क्या? बुनियादी पाठशालाएं इस स्थिति में परिवर्तन की कोशिश करती हैं। ये बालक विकासमान प्राणी हैं, उनको बढ़ने के लिए स्वस्थ, सम्पन्न और पोषक वातावरण की आवश्यकता है। सालभर में उसने जो जानकारी प्राप्त की उसे प्रत्येक श्रेणी के अंतिम समय में छात्र जैसी की वैसी बता दें, इस पर बुनियादी तालीम के पाठ्यक्रम में उतना महत्त्व नहीं दिया जाता। पाठशाला के वातावरण तथा सामाजिक व्यवहार में, शिक्षकों के मानस में, पुस्तकालय में, कारीगरी में, संगीत तथा समाज के सयाने बुजुर्गों से विद्यार्थी को सतत प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए, और उसका प्रभाव पाठ्यक्रम में भी हो जिसे वे स्वयं उपयोग कर सकें, हजम कर सकें। ज़मीन में अलग–अलग प्रकार के पौधे अलग–अलग तरह से उगते हैं। बच्चे भी उसी तरह बढ़ते हैं। उनको स्वतंत्रता देने पर सब एक प्रकार के प्रश्न नहीं पूछेंगे। एक प्रकार की पुस्तकें नहीं पढ़ेंगे। विद्यार्थी सुनी हुई या पढ़ी हुई जानकारी शब्दशः नहीं बता सकता हो लेकिन उसका अर्थ उसे मालूम हो, यह नहीं कि उसने उस जानकारी को आत्मसात् नहीं किया है। स्वस्थ जीवन अपनी आवश्यकतानुसार समझ ग्रहण करता है और उसे आत्मसात् करता है। पौधों का विकास मापने का जो तरीक़ा आज़माते हैं वही बालकों का विकास मापने का एकमात्र तरीक़ा है। स्वावलम्बन, फूल–फल के गुण पर से माप सकते हैं। बंधे–बंधाये पाठ्यक्रम और परीक्षा–पद्धति को जीवन–प्रेरक शिक्षा द्वारा बदलना चाहिए। सबसे पहले उसे शिक्षकों को बदलना चाहिए। हमारे अधिकतर शिक्षकों की धारणा है कि अब उनकी आगे तालीम की आवश्यकता नहीं है। उन्हें अपने ये विचार बदलने चाहिए। उनके मानस की दिशा पश्चिम से पूर्व की ओर बदलनी चाहिए। काम को नवीन दृष्टि से समझाने और सिखाने का प्रयोग ही जीवन है, ऐसा शिक्षकों को समझना चाहिए। मानस–परितर्वन के सिवाय नयी टेक्निक की तालीम एक सांचे में ढली हुई पद्धति को नयी पद्धति में परिणत करेगी।

3. नई तालीम सहकारमूलक है

मनुष्य अकेला नहीं रह सकता। वह परिवार और समाज में रहता है। अपने विकास की आदिम अवस्था में भी उसका जीवन बुनियादी तौर पर सहकार पर ही निर्भर करता था। शिक्षा का अर्थ है कि उसे सही काम पर लगाना, उसकी सृजनात्मक रुचि को दिशा देना, उसमें सहयोग से काम करने की प्ररेणा भरना। इस प्रकार की सहकार योजना बनाने की व्यवस्था में काम के प्रत्येक अंग का उपयोग होना चाहिए। 'बुनियादी तालीम' में जो साधन अपनाये गये हों उन सब पर उस सहयोग का असर प्रभावपूर्ण हो और उत्पादन की हुई चीज़ों का उपयोग किस भांति करना है, इसका निर्णय सहकार से होना चाहिए।

आजकल अधिकतर पाठशालाओं में प्रतिस्पर्द्धा की भावना बहुत ज़्यादा प्रचलित है, क्योंकि शिक्षक वर्ग और माता–पिता दोनों ने स्पर्द्धा–पद्धति से शिक्षा पायी है। इसलिए दूसरी कोई पद्धति उनकी समझ में नहीं आती है। बार–बार कहा जाता है कि बालक इनाम के लिए या परीक्षा में प्रथम आने के लिए या प्रमाण–पत्र हासिल करने के लिए काम करेंगे। लालच के सिवाय बालक ज़रा भी काम नहीं करेंगे। हमारी शिक्षण–पद्धति के स्वार्थी लक्ष्यों का लज्जास्पद परिणाम स्पर्द्धा–पद्धति है। बाहरी लाभों के लिए चलायी गयी इस स्पर्द्धा के भयंकर परिणाम बहुत दर्दनाक़ हैं, यह स्पष्ट है। परीक्षा के लिए बनी शिक्षा–प्रणाली जीवनहीन और बेकार है। यह सत्य, अहिंसा के तालीम पर नहीं है।

परन्तु सर्वसामान्य के लिए सबके द्वारा मिल–जुलकर काम करने से ही भौतिक, आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक उन्नति हो सकती है। यह सही जीवन की शिक्षा है इसलिए बुनियादी तालीम में एक बालक को दूसरे बालक की स्पर्द्धा में नहीं रखते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की प्रगति की नींव ध्यानपूर्वक रखी जाती है। परन्तु प्राप्त लक्ष्य सामूहिक होता है और यह प्राप्त लक्ष्य बालकों को एक साथ काम करके अपनी टुकड़ी के लिए प्राप्त करना है।

दृष्टान्त के रूप में कताई–उद्योग की व्यवस्था देखें। बाहर से व्यक्ति को अलग दिखानेवाले काम में स्पर्द्धा का तत्त्व दाखिल करना बहुत आसान होगा। पुराना शिक्षक बच्चों को कहेगा– कौन सबसे ज़्यादा कातता है, देखें! और सबसे ज़्यादा कातनेवाले को शाबाशी देगा या ख़ुशी की तालियां बजवायेगा, यह ग़लत तरीक़ा है। बुनियादी पाठशाला में सब बालक मिलकर यह निर्णय करते हैं कि सप्ताह में कितना सूत कताने का लक्ष्य रखना है। प्रतिदिन सबने मिलकर कितना काता, यह देखने के लिए सबके तारों का जोड़ करते हैं और लक्ष्य के हिसाब से कितना काता उसका प्रमाण देखते हैं। अगर लक्ष्य से कम हुआ तो प्रत्येक को दूसरे दिन कुछ अधिक कातने का प्रयत्न करना चाहिए। इस पद्धति से सारा काम सम्पूर्ण सहकारी बुनियाद पर चलता है यह केवल एक दृष्टान्त है। पाठशाला में दिनभर इस सहयोग का अधिक असर रहा करता है। यह अमिट प्रभाव बालकों को सिखाता है कि सहयोग से काम करने का तरीक़ा काम की व्यवस्था की दृष्टि से स्वाभाविक, सही और यथार्थ है।

फिर भी पहले कहा गया तदनुसार समूह में व्यक्ति को भुलाया नहीं जाता। शिक्षक पाठशाला के जीवन के अनेक पहलुओं में प्रत्येक बालक की प्रगति का नोट ध्यानपूर्वक रखता है। ख़ुद के दिनभर के काम की, ख़ुद की योजना, रुचि, क्षमता और समूह के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए विद्यार्थी को कहा जाता है। विद्यार्थी का लिखने का अभ्यास पक्का हो जाता है उसके बाद तुरन्त अत्यन्त आसान तरीक़े से वह लिखने की शुरुआत करता है। विद्यार्थी अपना पाठ्यक्रम पूरा करता है। इस बीच वर्ग में विचार विनिमय होता है, उससे और पाठशाला में सिखाये गये विषयों पर ग्रहणशक्ति के अनुसार रोज़निशि में विचार प्रदर्शित करने की शक्ति सामान्य शालाओं की अपेक्षा बुनियादी शाला में बहुत उच्च होती है।

इस तरह सहकारी समाज की व्यवस्था में जवाबदारी और व्यक्तिगत बुद्धि का विकास होता है और इन सादे ठोस उपायों द्वारा बुनियादी पाठशाला के विद्यार्थी लोकतंत्र की स्वतंत्रता के आवश्यक लाभों का अनुभव करते हैं। लोकतंत्र के स्वातंत्र्य का अर्थ है सबकी भलाई के लिए स्वीकार किये गये कानूनों की मर्यादावाला स्वातंत्र्य।

4. बुनियादी शिक्षा अहिंसक है

यह शिक्षा बालकों के लिए ही है इसलिए उसमें बच्चों की स्वाभाविक प्रेरणाओं की उपेक्षा नहीं होती, वह जीवन में प्ररेक तत्त्व की तरह है। वह मानव की अपार विविधता का आदर करती है। वह सहकारी है इसलिए बालकों को आपस में एक–दूसरों का आदर करने की तालीम देती है। परस्पर एक दूसरे का स्वेच्छापूर्वक आदर करना, अहिंसक समाज का आवश्यक कानून है। परन्तु वह अहिंसा हिंसा का इनकार मात्र नहीं है।

गांधीजी के शब्दों के अनुसार, 'अहिंसा सच्चा स्वातंत्र्य देनेवाली है।' 'स्वातंत्र्य' शरीर, मन, आत्मा के तन्दुरुस्त विकासवाली स्थिति है। किन–किन चीज़ों की सच्ची आवश्यकता है इसका ज्ञान स्वातंत्र्य की बुनियाद है। सादा, स्वास्थ्यप्रद भोजन, साफ़ कपड़े, अच्छा मकान, अच्छा आरोग्य, संगीत और तालबद्ध हलचल एवं अपने हाथों से सुन्दर निर्माण की ख़ुशी, कार्य और खेल में मित्र व साथी का आनन्द, इन चीज़ों की आवश्यकता है। ये सब चीज़ें अच्छी बुनियादी पाठशाला का वातावरण सुखी बनाती है। सच्ची सम्पत्ति का यह स्तर है कि कृत्रिम मेहमानगिरी, सोना–चांदी और चमकीले कपड़ों की तृष्णा से मुक्त होना। सच्ची सम्पति क्या है इसे अहिंसक समाज समझता है और उससे वह संतुष्ट रहता है। इसलिए उसे अपने पड़ोसी से ईर्ष्या करने की आवश्यकता नहीं रहती। संतोष, आत्मसंयम, इच्छा तथा स्वामित्व की स्वेच्छापूर्वक मर्यादा नयी तालीम के आचारशास्त्र के अंग हैं।

अहिंसक आचार का मूल्यांकन तब तक पूर्ण निर्विघ्न नहीं होता जब तक कि गहराई से समाज–कल्याण के द्वारा उसकी बुनियाद सत्य पर नहीं रहती। हमारा अंतिम लक्ष्य राष्ट्र या मानवमात्र की भलाई है। परन्तु हमेशा समूह के काल्पनिक कल्याण के लिए चारित्र्य और सद्‌बुद्धि के अव्यक्त लाभों का बलिदान होने का डर रहेगा, यानी एक या दूसरे रूप में सदैव सरमुख़्त्यारी का डर बना रहेगा। समाज या व्यक्ति का कायमी भला तभी संभव है जब वह प्रकृति के नियम का या धर्म की भाषा में ईश्वरेच्छा के अनुकूल हो। गांधीजी की तरह सत्य और प्रामाणिकता के लिए सामाजिक दबाव से न झुकनेवाले व्यक्तियों को नयी तालीम पैदा नहीं करती है, तो वह असली महत्त्व के प्रश्न में मानव जाति के प्रति बेवफ़ा होगी। इसलिए बुनियादी शिक्षा में से सत्य का सर्वोपरि स्थान है। शिक्षा में सबसे कोमल और महत्त्वपूर्ण काम भावी प्रजा को सत्य और भलाई के लिए आवश्यक पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित करने में सहायक होना है। प्रत्येक बालक को यह सीखना है कि अपनी स्वार्थपूर्ण और आक्रामक प्रेरणाओं को विशुद्ध बनाकर सर्वोदय की ओर ले जाना है, क्योंकि इससे स्वयं उसका जीवन अपने साथियों के समाज में पूर्णरूप से फल–फूल सकता है। परन्तु बस अकेला वह नहीं है। उसे समझना चाहिए कि समग्र मानव–जाति जिस विश्व का अंग है उसके शाश्वत कानूनों को मान्य करने से और उन कानूनों का अमल करने से ही वह (समग्र मानव–जाति) अपनी पूर्ण ताक़त सौन्दर्य में विकसित कर सकती है। जिस तरह स्वार्थी बालक अपने परिवार को दुःखी करता है उसी तरह मानव जाति अन्य जीवों के और दुनियारूपी अपने घर के अन्य साधनों की स्वार्थी असावधानता और आक्रमक शोषण से दुनिया के जीवन को दुःखी बनाती है। इसका अर्थ यह है कि स्थायी स्वातंत्र्य के लिए बुनियादी गुण चतुराई और उदारता है। सयानापन सादी भाषा में कहें तो शाश्वतपूर्ण सत्य पर पक्की श्रद्धा जो समग्र समाज के जीवन के सुख–शान्ति का चित्र देखता है और अपने जीवन को उस चित्र के अनुसार बनाता है। वह सयाना उदारता यानी

सबके भले में ही अपनी भलाई के सिद्धान्त पर पक्की श्रद्धा, सच्चा, प्रेमल, उदार आत्मा से मिलता है। उस सबमें भलाई को प्रतिबिम्बित देखता है। उसका इन विविध व्यक्तियों का अर्थ अहिंसा के प्रति गहरा आदर होता है। वह किसी मानव को दुःखी नहीं करता।

मानव–जाति के दूसरे गुण इन दो के अंग है। प्रामाणिकता, वफ़ादारी, हिम्मत, साफ़ और तेज वृद्धि, निश्चल कुशल हाथ और दृष्टि ये सब अच्छे गुण हैं। हमने देखा कि नयी तालीम का लक्ष्य इन गुणों का विकास करना है। परन्तु स्वतंत्र रूप से वे द्वितीय कोटि के हैं। अगर उनके मूल में सत्य–अहिंसा नहीं हो तो आसानी से उनका उपयोग थोड़े लोगों के स्वार्थों के लिए या भौतिक लाभों के लिए किया जा सकता हैं। हिटलर के जर्मनी और दूसरे बहुत से सरमुख़्त्यारी व अन्यायी राज्यों में यही घटित हुआ। प्रामाणिक मानवों ने अपनी कुशलता, बुद्धि और बहादुरी का उपयोग हिंसक और असत्य के बुनियादवाली जीवन–प्रणाली के लिए किया है। सज्जनता और भलमनसाईमूलक शिक्षा ही सत्य–अहिंसा मूलक होने की अधिकारिणी है। परमेश्वर के नाम का उपयोग करें या न करें तो भी यदि नयी तालीम सज्जनता और भलमनसाई का प्रचार करती है तो वह आध्यात्मिक शिक्षा है।

अगर भारत को गांधीजी का रास्ता पसन्द है तो वह सज्जनों का आदर करनेवाला और दूर–दूर के गांव के ग़रीब–से–ग़रीब सबके संतोष, स्वातंत्र्य तथा शांति से प्रगति मापनेवाला और उनका मूल्य समझनेवाला समाज विकसित करने के काम में लगेगा। इस विकास में शिक्षक और शाला का केन्द्रीय स्थान है।

भारत के छोटे–छोटे गांव के लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अधिकतर ख़ुद करते थे। अपने समाज के व्यवहारों की व्यवस्था भी वे स्वयं करते थे। इन्हीं गांवों की ज़मीन ने भारत के बड़े–से–बड़े विचारक, कवि और संतों को पोषण दिया है। यही ग्रामीण समाज अहिंसक आदर्श के नज़दीक आए। वह आदर्श अभी भी भारत के हृदय में है। नयी तालीम इस अहिंसक आदर्श का निश्चयपूर्वक स्थिर भारतीय समाज की बुनियाद डालने का ध्येय रखती है। भूतकाल की सुन्दर संस्कृति टिकी हुई है, क्योंकि वह सत्य की पहाड़ी चट्टान पर खड़ी है तथा दूसरे देशों के संबंधों से और बढ़े हुए ज्ञान से तथा अलग प्रकार की समृद्ध सामग्री से नयी संस्कृति बनायी जा सकती है। परन्तु मानव के सच्चे स्वभाव से उन्हीं सही मूल्यों द्वारा उसी पहाड़ी चट्टान पर नयी संस्कृति चित्रित करनी चाहिए।

★ 'नयी तालीम' 1972 से साभार।

अध्ययन रिपोर्ट

पुस्तकालय का विद्यार्थियों की भाषाई क्षमता पर प्रभाव

★ शोधकर्त्री – शहनाज़ डी.के.
★★विश्लेषणकर्त्री – नम्रता बत्रा

भूमिका

स्कूल में बच्चों को पढ़ना–लिखना सिखाने की प्रक्रिया पहली कक्षा से ही शुरू हो जाती है। पर उच्च प्राथमिक कक्षाओं तक आते–आते भी कई बार ऐसा लगता है कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों में लिखी हुई चीज़ों का केवल उच्चारण ही कर रहे हैं, उन्हें समझ नहीं रहे हैं । यह मुझे इसलिए भी लगता है क्योंकि जब बच्चों से पढ़ी गई बात से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं तब वे बहुत बार निरुत्तर ही रहते हैं। मैंने कई स्रोतों से यह सुना और पढ़ा है कि बच्चों को पाठ्यपुस्तकों के अलावा और भी पढ़ने के मौक़े देना ज़रूरी होता है। बच्चों को जितना ज़्यादा पढ़ने को दिया जाए, उतना उनकी पढ़ने की क्षमता का विकास होता है। इसी मुद्दे से जूझते हुए मैंने यह अध्ययन करने की सोची।

स्कूल एवं विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि

यह शोध उदयपुर ज़िले के विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि में किया गया। इस स्कूल में कक्षा दसवीं तक के छात्र अध्ययनरत हैं। इस विद्यालय में अधिकांश छात्र आस–पास के गांवों से आते हैं और वे सुथार, राणा, डांगी, पंवार, सेन, गमेती, मेघवाल और गरासिया जाति के हैं। इनमें 70 प्रतिशत बच्चों के मां–बाप या तो अनपढ़ हैं या अपनी स्कूली शिक्षा पूरी नहीं कर पाए हैं और खेती, दूध बेचने, ड्राइविंग और मज़दूरी जैसे व्यवसायों से जुड़े हैं। बच्चों के घरों में स्कूल की किताबों के अलावा और क़िस्म की पुस्तकें व अन्य पठन सामग्री आदि नहीं के बराबर ही हैं। बच्चे घर पर और स्कूल में एक दूसरे से बातचीत करने लिए मेवाड़ी, वागड़ी जैसी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं।

मुख्य पुस्तकालय

विद्यालय के मुख्य पुस्तकालय में बच्चों के पढ़ने के लिए लगभग 5000 किताबें हैं। ये कई प्रकार की हैं– कहानियां, कथाएं, जीवनियां, नाटक, क्राफ़्ट और ऑरिगेमी, विज्ञान एवं अन्य गतिविधियों से सम्बंधित, पत्र–पत्रिकाएं आदि। इस पुस्तकालय का उपयोग कक्षा 6 से 10 के विद्यार्थी करते हैं। पुस्तकालय में आनेवाले समाचार पत्र–पत्रिकाओं को विद्यार्थी विद्यालय समय में कभी भी पढ़ सकते हैं और पुस्तकें इश्यू कराने के लिए उन्हें सप्ताह में एक पीरियड दिया जाता है।

★ विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय में शिक्षिका हैं। ★★विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र में कार्यरत।

कक्षा पुस्तकालय

कक्षा 4 व 5 में प्रत्येक कक्षा में एक पुस्तकालय की व्यवस्था है। इस पुस्तकालय में लगभग 400 पुस्तकें हैं। इनमें कहानियां, कथाएं, विज्ञान संबंधी सरल पुस्तकें तथा गतिविधियों की पुस्तकें व पत्रिकाएं आदि हैं। इस पुस्तकालय से बच्चे सप्ताह में दो बार पुस्तकें इश्यू करवा कर घर ले जा सकते हैं। इसके अलावा वे अपने खाली समय में भी इसका उपयोग कर सकते हैं।

परिकल्पना

अधिक पुस्तकें पढ़नेवाले विद्यार्थियों की भाषाई क्षमता (समझ के साथ पढ़ना) बेहतर होती है।

उद्देश्य

1. विद्यार्थियों की भाषाई क्षमता (समझ के साथ पढ़ना) और उनके द्वारा पुस्तकालय से इश्यू करायी गई पुस्तकों की संख्या में सह–संबंध देखना।

2. विद्यार्थियों की भाषाई क्षमता का उनके आर्थिक एवं सामाजिक स्तर से सह–संबंध देखना।

न्यादर्श

शोध के लिए मैंने विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय की कक्षा 6 (सत्र 2006–07) के 22 विद्यार्थियों का चयन किया। मैं कक्षा 4 और 5 में भी इन बच्चों की कक्षा अध्यापिका थी। यह विद्यार्थी पिछले दो वर्ष से अपनी कक्षा पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों का इस्तेमाल कर रहे थे। इसके लिए उन्हें सप्ताह में तीन दिन, 35 मिनिट का एक–एक कालांश दिया जाता था। साथ ही वे अपनी इच्छा से जब चाहे पुस्तकें घर ले जाकर पढ़ सकते थे। इस प्रकार बच्चों को कक्षा में पुस्तकें पढ़ने के लिए दो वर्ष में, 14 माह तक, प्रतिमाह 8 से 10 कालांश मिले। तीसरे वर्ष, कक्षा 6 में, मुख्य पुस्तकालय के लिए सप्ताह में एक कालांश दिया गया तथा कक्षा पुस्तकालय के लिए हर सप्ताह, दो कालांश भी दिए गए। इस तरह तीसरे वर्ष में बच्चों को हर सप्ताह, पुस्तकालय के लिए तीन कालांश मिले।

यह शोध अप्रैल, अगस्त व सितम्बर, 2006 में बच्चों द्वारा मुख्य और कक्षा पुस्तकालय से इश्यू की गई पुस्तकों की कुल संख्या पर किया गया है।

उपकरण तथा उनका विवरण

विद्यार्थियों की भाषाई क्षमता का आकलन करने के लिए तीन उपकरणों का इस्तेमाल किया गया– गणित के इबारती सवालों का पर्चा, क्लोज़ टेस्ट और हिन्दी में श्रुतलेख। विद्यार्थियों का सामाजिक और आर्थिक स्तर आंकने के लिए भी एक पर्चा दिया गया।

1. **गणित के इबारती सवालों का पर्चा** : पर्चे में गुणा व भाग के कुल 10 सवाल थे। भाग के सवाल 'समूहीकरण' और 'बराबर बंटवारा' प्रकार के थे और गुणा के सवाल 'बराबर समूह' और 'कार्तीय गुणनफल' के थे। इन सवालों में केवल यह देखने की कोशिश की गई कि विद्यार्थियों को सवाल

पर्चे के कुछ सवाल

- आपके पास 808 पौधे हैं, आपको इनको 8 कतारों में लगाना है तो हर कतार में कितने पौधे होंगे?
- एक कतार में 9 कुर्सियां हैं, तो 507 कतारों में कितनी कुर्सियां होंगी?
- एक कमीज़ में 9 बटन लगते हैं, तो बताओ 409 बटन कितने कमीज में लगेंगे और कितने बटन शेष रहेंगे?
- एक माला बनाने के लिए 108 मोती चाहिए। ऐसी ही 25 माला के लिए कितने मोती चाहिए?

समझ आए में हैं या नहीं, मतलब विद्यार्थी इस बात का सही चुनाव कर रहे हैं या नहीं कि उन्हें सवाल में कौन सी संक्रिया करनी है। यदि संक्रिया का चिह्न सही है परन्तु उत्तर ग़लत है विद्यार्थियों के अंक नहीं काटे गए।

2. **क्लोज़ टेस्ट** : क्लोज टेस्ट पाठक की पठन क्षमता को जांचने के लिए इस्तेमाल किया जानेवाला एक उपकरण है। इसमें पाठक को एक लेख में बराबर दूरी पर आए रिक्त स्थानों को भरना होता है। जितनी अच्छी पाठक की पठन क्षमता उतना वह पाठ को समझते हुए, रिक्त स्थान के लिए उपयुक्त शब्द ढूंढ़ पाता है।

क्लोज़ टेस्ट के लिए पैराग्राफ माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान द्वारा प्रकाशित 'मधुरिमा' नामक कक्षा नौ की पाठ्य पुस्तक से लिया गया है। लगभग 150 शब्दों का यह पैराग्राफ महात्मा गांधी की जीवनी से लिया गया था। इस पैराग्राफ के हर 7 वें शब्द को हटाकर वहां रिक्त स्थान छोड़ दिया गया। विद्यार्थियों को पैराग्राफ में 21 रिक्त स्थान भरने थे। यह पैराग्राफ बच्चों के लिए बिल्कुल नया था और उन्होंने इसे पहले नहीं पढ़ा था। केवल उसी उत्तर को सही माना गया है, जो जीवनी में लिखा है। अनुमानित या मिलते–जुलते उत्तरों को अंक नहीं दिए गए।

3. **हिन्दी में श्रुतलेख** : श्रुतलेख के लिए पैराग्राफ कक्षा 5 की ''खुशी–खुशी'' पाठ्य–पुस्तक से लिया गया। इसे बच्चों ने न तो पहले पढ़ा था न सुना था। पैराग्राफ में 10 वाक्य थे। बच्चों द्वारा की गई मात्राओं की ग़लतियों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया और उनके अंक भी नहीं काटे गए। पूरे–पूरे वाक्यों और शब्दों के छूटने पर अंक काटे गए हैं।

क्लोज़ प्रणाली

निम्नलिखित गद्यांश को ध्यान से पढ़कर प्रत्येक रिक्त स्थान में एक शब्द भरिये–

गगनवाड़ी आश्रम में सभी को अपने हिस्से का आटा पीसना पड़ता था। एक बार आटा समाप्त हो गया। ..... का मालिक आश्रमवासी सोचने लगा कि ..... क्या किया जाय। यदि वह चाहता ..... स्वयं भी पीसकर उस दिन का ..... चला सकता था। लेकिन चिढ़कर उसने ..... नहीं किया। वह सीधे बापू के ..... गया और बोला, ''बापू आज रसोई ..... में आटा नहीं है और कोई ..... वाला नहीं है। आप ही बताएं ..... क्या करूं? बापू बड़े शांत भाव ..... बोले, ''घबराने की बात नहीं है। ..... मैं चलकर पीस देता हूं।'' बापू ..... काम छोड़कर आटा पीसने लगे। जब ..... ने बापू चक्की चलाते देखा ..... उसके मन में बहुत ग्लानि हुई। ..... लज्जित होकर बोला, ''बापू आप जाइये, ... खुद ही आटा पीस लूंगा।'' सभी ..... पर इसका प्रभाव पड़ा। बापू यह ..... थे कि अपनी सेवा किए बिना कोई ..... की सेवा करता ही नहीं। ..... की सेवा किए बिना जो अपनी ..... सेवा करने के इरादे से कोई काम शुरू करता है, वह अपनी और संसार की हानि करता है।

4. **सामाजिक–आर्थिक स्तर के लिए प्रश्नावली:** इस प्रश्नावली में सवाल बच्चों के परिवार की सामाजिक और आर्थिक स्थिति से संबंधित थे। इस प्रश्नावली में जाति, परिवार के सदस्यों की शिक्षा, उनकी आय के स्रोतों और घर में उपलब्ध साधन–सुविधाओं की स्थिति जानना मुख्य ध्येय था।

विधि

प्राथमिक कक्षाओं में (कक्षा 4 व 5) विद्यार्थियों को कक्षा में पुस्तकें उपलब्ध करवाकर, उनकी पढ़ने की आदत विकसित करना तथा पढ़ने से उनकी भाषा की क्षमता (पढ़कर समझना) पर पड़नेवाले प्रभाव को समझने के लिए कक्षा 6 में इन बच्चों को तीन भिन्न–भिन्न प्रकार के पर्चे दिए गए जिनको हल करना बच्चों की भाषा क्षमता पर निर्भर था। इन पर्चों को अक्टूबर, 2006 में बच्चों से भरवाया गया।

इसकी प्रक्रिया निम्न थी–

(1) **गणित के इबारती सवाल** : इबारती सवाल के पर्चे की एक कॉपी हर बच्चे को दी गई। कक्षा में बैठने की जो सामान्यतः व्यवस्था होती है उसी व्यवस्था में उन्हें अपनी–अपनी जगह पर बैठकर पर्चा पढ़कर करने के निर्देश दिए गए। पर्चे के बारे में बच्चों को केवल यही बताया गया कि उस पर अपना नाम लिखें व सवालों को पढ़कर स्वयं हल करें। इसके लिए उन्हें किसी की मदद लेने की आवश्यकता नहीं है। शिक्षिका द्वारा भी उन्हें पर्चे के बारे में कुछ नहीं समझाया गया।

(2) **क्लोज़ टेस्ट** : इस पर्चे की एक कॉपी भी प्रत्येक बच्चे को दी गई। बच्चों को हमेशा की तरह कक्षा में पंक्तियों में बैठाया गया। उनसे कहा गया कि पहले वे एक बार पूरा पैराग्राफ पढ़ लें। उसके बाद दुबारा पढ़ते हुए, वाक्यों को समझते हुए, जो शब्द उन्हें सबसे ज़्यादा उपयुक्त लगे उसे वे खाली जगह में लिखें। पूरे पैराग्राफ में सभी रिक्त स्थानों को भरने के बाद वे पैराग्राफ को वापस पढ़ें और आवश्यकता हो तो सुधार कर लें।

(3) **हिन्दी में श्रुतलेख** : सभी विद्यार्थियों को एक–एक खाली काग़ज़ दिया गया जिस पर उन्होंने अपना नाम व श्रुतलेख लिखा। इसके बाद उन्हें एक पैराग्राफ सामान्य से थोड़ी धीमी गति से पढ़कर सुनाया गया। इस समय बच्चों को केवल पैराग्राफ सुनने को कहा गया। जब पैराग्राफ दूसरी बार पढ़ा गया तो बच्चों को लिखने को कहा गया। पैराग्राफ फिर सामान्य से धीमी गति में पढ़ा गया और प्रत्येक वाक्य पढ़ने के बाद शिक्षिका ने बच्चों को लिखने का कुछ समय दिया। किसी भी वाक्य या शब्द को दोहराया नहीं गया। पूरा पैराग्राफ लिखवाने के बाद एक बार फिर धीरे–धीरे पैराग्राफ

श्रुतलेख

मुनिया के घर अक्सर एक बिल्ली आ जाती थी। कभी कुर्सी के नीचे छिपी बैठी मिलती तो कभी बिस्तर के नीचे। उसका रंग सफेद था। उस पर काले और पीले रंगे के धब्बे थे। चितकबरी बिल्ली मुनिया को बहुत अच्छी लगती थी। मुनिया जब भी उसे देखती तो बड़े प्यार से उसे पुचकारती–'' बिल्ली, मेरी बिल्ली, म्याऊँ म्याऊँ।'' पर बिल्ली मुनिया को पास आती देख फौरन भाग जाती। मुनिया को बहुत बुरा लगता। वह चाहती थी कि बिल्ली से उसकी दोस्ती हो जाए। लेकिन बिल्ली थी कि उसे मुनिया से डर लगता था। एक दिन बिल्ली अम्मा से मार खाते–खाते बची थी। इसलिए शायद इतना डरती थी।

वापस पढ़कर सुनाया गया ताकि बच्चे छूटे हुए वाक्य या शब्द पूरे कर सकें। तीनों बार वाक्यों को शब्दों में तोड़–तोड़ कर नहीं पढ़ा गया ताकि बच्चे वाक्यों का अर्थ समझते हुए लेख का श्रुतलेख लिखें।

(4) **सामाजिक–आर्थिक स्तर हेतु प्रश्नावली** : इसके बारे में बच्चों को स्पष्ट रूप से निर्देश दिए गए कि आप वास्तविक स्थिति को बताएं और जो उत्तर आपके परिवार के लिए सही हैं उसी पर सही का निशान लगाएं। दिए गए उत्तरों में से अगर कोई भी आपके लिए सही नहीं हो तो आप अपना उत्तर लिख दें।

विश्लेषण

इन चारों पर्चों में आए अंकों और बच्चों द्वारा पढ़ी गई पुस्तकों की संख्या का एक–दूसरे से सह–संबंध निकाला गया। इसके लिए ***पीअरसन सह–संबंध*** का इस्तेमाल किया गया। मैंने यह पाया कि जिन बच्चों ने क्लोज़ टेस्ट में अच्छा किया, उन्होंने श्रुतलेख और गणित के इबारती सवालों में भी बेहतर किया है। जिन बच्चों ने तीन महीनों में पुस्तकालय से ज़्यादा किताबें इश्यू करवायी, उन्होंने क्लोज़ टेस्ट में भी बेहतर किया। मतलब मेरी कक्षा में जो बच्चे ज़्यादा किताबें पढ़ रहे थे उनकी समझ के साथ पढ़ने की क्षमता का ज़्यादा विकास हुआ है। बच्चों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का बच्चों की भाषा की क्षमता से कोई संबंध नहीं देखा गया। यह इस बात की ओर इशारा करता है कि ये सभी बच्चे अपने घरों में ज़्यादा पढ़ने की सामग्री के सापेक्ष नहीं हो पाते। बच्चों के सामाजिक और आर्थिक स्तर में कुछ अंतर ज़रूर है पर ये अन्तर इतने अधिक नहीं हैं। कुछ घरों में बच्चों को थोड़ी बहुत कहानी की किताबें इत्यादि ख़रीद कर दी जाती हैं और कुछ में बिल्कुल नहीं।

	सहसंबंध	आर्थिक एवं सामाजिक स्तर	श्रुतलेख	इबारती सवाल	क्लोज़ टेस्ट	पुस्तकें
आर्थिक एवं सामाजिक स्तर	Pearson Correlation	1	0.109	-0.347	0.117	0.317
	Sig. (2-tailed)	.	0.629	0.114	0.605	0.15
	N	22	2.20E+01	22	22	22
श्रुतलेख	Pearson Correlation	0.109	1	0.033	0.557	0.425
	Sig. (2-tailed)	0.629	.	0.885	0.007	0.049
	N	22	22	22	22	22
इबारती सवाल	Pearson Correlation	-0.347	0.033	1	0.434	0.247
	Sig. (2-tailed)	0.114	0.885	.	0.044	0.268
	N	22	22	22	22	22
क्लोज़ टेस्ट	Pearson Correlation	0.117	0.557	0.434	1	0.484
	Sig. (2-tailed)	0.605	0.007	0.044	.	0.022
	N	22	22	22	22	22
पुस्तकें	Pearson Correlation	0.317	0.425	0.247	0.484	1
	Sig. (2-tailed)	0.15	0.049	0.268	0.022	.
	N	22	22	22	22	22

विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त पर्चों/प्रश्नावली में अंक

विद्यार्थी क्रमांक	आर्थिक– सामाजिक स्तर (43)	श्रुतलेख (40)	इबारती सवाल (40)	क्लोज़ टेस्ट (42)	कुल पढ़ी गई किताबें
1	31	36	12	18	56
2	31	40	36	32	41
3	26	36	36	18	49
4	31	32	16	6	7
5	23	30	32	6	18
6	26	30	24	0	14
7	24	38	16	18	8
8	23	34	32	18	9
9	27	20	32	12	15
10	28	24	24	8	8
11	30	36	4	10	11
12	22	36	20	20	20
13	29	40	24	16	27
14	31	26	20	16	20
15	30	38	36	32	43
16	33	34	8	12	56
17	29	32	16	26	10
18	21	28	32	16	29
19	27	38	36	34	51
20	33	32	20	18	21
21	27	38	36	26	26
22	25	32	12	12	5

विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि, उदयपुर के हस्त निर्मित कागज़ उद्योग इकाई में जलकुम्भी (बेकार की घास) से कागज़ बनाने का एक प्रयोग किया गया जिसमें सफलता मिली है। इस प्रयोग में 70 प्रतिशत जलकुम्भी और 30 प्रतिशत कोटन रेग्ज़ का इस्तेमाल किया गया।

पिगमेलियन प्रभाव

पिगमेलियन प्रभाव, रोज़नथाल प्रभाव को प्रचलित शब्दों में अध्यापक की अपेक्षाओं का प्रभाव कहा जाता है, जिसका संबंध उन परिस्थितियों से है जिनमें विद्यार्थी दूसरों के मुक़ाबले सिर्फ़ इसलिए बेहतर प्रदर्शन कर लेते हैं क्योंकि उनमें ऐसा करने की आशाएं रखी जाती हैं। पिगमेलियन प्रभाव से पता चलता है कि विद्यार्थी बड़ों की आशाओं और उम्मीदों को आत्मसात् कर लेते हैं। यह एक तरह से स्वयं सच होनेवाली भविष्यवाणी है। जिन विद्यार्थियों से कम उम्मीदें रखी जाती हैं, वे अपने नकारात्मक लेबल को आत्मसात् कर लेते हैं और जिन पर सकारात्मक लेबल लगते हैं, वे सफलता से आगे बढ़ते जाते हैं। शिक्षा और सामाजिक वर्ग पर इसके प्रभाव को समाजशास्त्र में अक्सर चर्चा में लाया जाता है।

पिगमेलियन प्रभाव, रोज़नथाल प्रभाव को प्रचलित शब्दों में अध्यापक की अपेक्षाओं का प्रभाव कहा जाता है, जिसका संबंध उन परिस्थितियों से है जिनमें विद्यार्थी दूसरों के मुक़ाबले सिर्फ़ इसलिए बेहतर प्रदर्शन कर लेते हैं क्योंकि उनसे ऐसा करने की आशाएं रखी जाती हैं। पिगमेलियन प्रभाव से पता चलता है कि विद्यार्थी बड़ों की आशाओं और उम्मीदों को आत्मसात् कर लेते हैं। यह एक तरह से स्वयं सच होनेवाली भविष्यवाणी है। जिन विद्यार्थियों से कम उम्मीदें रखी जाती हैं, वे अपने नकारात्मक लेबल को आत्मसात् कर लेते हैं और जिन पर सकारात्मक लेबन लगते हैं, वे सफलता से आगे बढ़ते जाते हैं। शिक्षा और सामाजिक वर्ग पर इसके प्रभाव को समाजशास्त्र में अक्सर चर्चा में लाया जाता है।

रोज़नथाल–जैकबसन अध्ययन

राबर्ट रोज़नथाल और लैनोर जैकबसन (1968–1992) ने पिगमेलियन प्रभाव पर गहन रूप से अध्ययन किया है। उन्होंने अपने अध्ययन में दिखाया कि यदि अध्यापकों ने कुछ बच्चों से अपनी उम्मीदें ज़्यादा रखीं तो उन बच्चों के प्रदर्शन का स्तर असल में ज़्यादा बेहतर हुआ। कई बार तो उन बच्चों के प्रदर्शन में बढ़ी हुई उम्मीदों के कारण दुगुनी बढ़ोतरी देखने को मिली। उनके प्रयोग का लक्ष्य यह दिखाना था कि दूसरों की उम्मीदों की मदद से सच्चाई को बदला जा सकता है। यह प्रभाव लाभकारी या विनाशकारी दोनों ही हो सकते हैं। बस फ़र्क इस बात से पड़ता है कि बच्चे पर कैसा लेबल लगाया जा रहा है, सकारात्मक या नकारात्मक। इस अध्ययन के स्वाभाविक रूप से

व्यवहार में आनेवाले पूर्वाग्रहों का जीवन की परिस्थितियों में परीक्षण किया गया था।

अपने प्रयोग के शुरू में रोज़नथाल ने पूर्वानुमान लगाया कि अगर प्राथमिक शालाओं के अध्यापकों को यह सूचना दे दी जाए कि कुछ बच्चे दूसरों के मुक़ाबले ज़्यादा तेज़ हैं तो अध्यापक अनजाने में उन्हीं विद्यार्थियों की प्रगति को बढ़ावा देंगे? भले ही यह केंद्रीय महत्त्व का बिंदु न हो लेकिन इस अध्ययन के बाद से शिक्षा से जुड़े चर्चा और विमर्श में अध्यापकों के प्रभाव को एक अहम मुद्दा माना जाता है। शिक्षा की प्रक्रिया में अध्यापकों की ऊंची आशाओं का प्रभाव बहुत गहरा और ज्यादा होता है।

रोज़नथाल और जैकबसन ने अपने अध्ययन में तीसरी कक्षा के बच्चों को उनकी आंखों के रंग के हिसाब से दो समूहों में बांट दिया था। एक समूह को उनकी आंखों के रंग के कारण दूसरे से तेज़ और बुद्धिमान घोषित कर दिया था। उन्होंने जब समूहों को आमरूप से दी जानेवाली वर्तनी–परीक्षाएं दीं तो बेहतर घोषित किए गए उस समूह के बच्चों के अंक कहीं ज़्यादा बेहतर आए। प्रयोग को उलटकर भी देखा गया। जब पहले कम तेज़ कहे गए समूह को ज़्यादा बुद्धिमान घोषित किया गया तो उन बच्चों का प्रदर्शन बेहतर हो गया। इसीलिए अध्यापकों को बहुत सजग होकर अपने व्यवहार और सोच पर चिंतन करते रहना चाहिए कि कहीं वे अपनी उम्मीदें निराधार रूप से कम रखकर बच्चों के अधिगम को नकारात्मक रूप से प्रभावित तो नहीं कर रहे हैं।

शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन से यह साबित कर दिखाया कि समाज के पिछड़े कहे जानेवाले वर्गों के बच्चों का स्कूली प्रदर्शन कई बार निम्न स्तर का होता है क्योंकि अध्यापकों की उनसे उम्मीदें ही ऐसी होती हैं। उन्होंने सैन फ्रैंसिस्कों की एक प्राथमिक शाला में कक्षा एक से छः तक के बच्चों की सीखने की क्षमताओं के बारे में अध्यापकों को ग़लत जानकारी दी। कुछ विद्यार्थियों के लिए बता दिया गया कि उनका परीक्षण हुआ था और वे बौद्धिक विकास के एक खास स्तर पर थे। जबकि वास्तव में ऐसा कोई परीक्षण नहीं हुआ था। प्रयोग के अंत में पाया गया कि उनमें से कई विद्यार्थियों खासकर कक्षा एक और दो के विद्यार्थियों का प्रदर्शन समान क्षमतावाले विद्यार्थियों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा अच्छा था।

पिगमेलियन प्रभाव पर सैकड़ों अध्ययन हो चुके हैं और सब में यही निकलकर आया है कि शिक्षक बच्चों से जैसी उम्मीदें रखते हैं बच्चों का प्रदर्शन वैसा ही हो जाता है।

★ पढ़ने की समझ, एन.सी.ई.आर.टी. से साभार।

मस्तमौला बचपन

★अनिता मिश्रा

★ विद्या भवन नर्सरी स्कूल में शिक्षिका हैं।

बच्चा जब नर्सरी कक्षा में था तब बिना चॉकलेट लिये स्कूल नहीं आता था। उसकी जेब हमेशा चॉकलेट से भरी रहती थी। और कक्षा के सारे बच्चे उसके चारों तरफ़। चॉकलेट तो अमन आज भी स्कूल में लाता है लेकिन दोस्तों में बांटकर खाता है।

इस बच्चे की औपचारिक पढ़ाई में शुरू से ही रुचि नहीं थी। उसे तो बस, बातें करना, खेलना, और दूसरे बच्चों को मारने में ही अधिक मज़ा आता था।

नर्सरी कक्षा में तो ये चलता रहा लेकिन जब यह बच्चा फर्स्ट जूनियर में आया तो उसे बहुत परेशानी हुई। इस कक्षा में औपचारिक पढ़ाई शुरू हो जाती है और बच्चे की मनमानी अधिक नहीं चल सकती। उसकी कक्षा अध्यापिका भी ऐसी थी जिसका औपचारिक पढ़ाई कठोरता से लागू करने में अधिक विश्वास था। बच्चे को प्रतिदिन कुछ नया करने को और लिखने को चाहिये था। लेकिन अध्यापिका का मानना था कि जब तक बच्चा किसी भी एक अक्षर को बार बार नहीं लिखेगा तब तक वह दूसरा अक्षर नहीं सीख सकता। यह काम बच्चे को रुचिकर नहीं लगता था। इसलिये वह नहीं करता था। होमवर्क भी अक्सर नहीं करता था। इससे अध्यापिका उस बच्चे से नाराज़ रहती थी। बच्चे के अभिभावक ने इस बारे में अध्यापिका से बातचीत की तो अध्यापिका ने कठोरता से कहा कि उसके पढ़ाने का यही तरीक़ा है और वह इसी तरह से ही पढ़ायेगी। धीरे-धीरे अध्यापिका और अभिभावक की तकरार बढ़ने लगी। अध्यापिका ठीक व्यवहार नहीं करती और बच्चे पर कम ध्यान देती। हमेशा उसे डांटती या सज़ा देती। नतीजा यह हुआ कि बच्चा उस कक्षा में ज़्यादा कुछ नहीं सीख सका। उसको वर्णमाला और अंग्रेज़ी के अल्फाबेट की पूर्णतया पहचान नहीं हो सकी। वर्ष के अंत में यह तय किया गया कि बच्चे को इसी कक्षा में रोका जाय। लेकिन हमें मालूम था कि सच्चाई क्या है। यदि बच्चा एक वर्ष और उस अध्यापिका की कक्षा में रहता तो उसके साथ अन्याय होता रहता। इतनी छोटी कक्षा में बच्चे को फ़ेल नहीं करते इसलिए बच्चे को अगली कक्षा में चढ़ा दिया गया।

बच्चा कक्षा एक में आ गया जिसकी कक्षाध्यापिका मैं थी। जब बच्चा पहली कक्षा में आया तो उसको वर्णमाला और स्वरों की पहचान नहीं थी। पढ़ना लगभग नहीं आता था। लेकिन बच्चे का सामान्यज्ञान बहुत अच्छा था। भाषा का उपयोग अच्छा था। अपनी बात को स्पष्ट रूप से समझाने की उसमें क्षमता थी।

कक्षा पहली में हिन्दी, अंग्रेज़ी, गणित व पर्यावरण विज्ञान अलग-अलग अध्यापिकाएं पढ़ाती हैं।

अमन को अंकों की समझ थी। छोटे-छोटे सवाल जो बच्चे अक्सर गिनकर हल करते थे उन्हें वो मौखिक ही हल कर लेता था।

इस कक्षा के बच्चों के लिए मैंने और हिन्दी विषय की अध्यापिका ने कार्य योजना पूरी कर लेने के बाद उन्हें चित्र बनाने और अपनी पसंद की पत्रिकाएं पढ़ने की आज़ादी दी थी। इसकी वजह से बच्चे कक्षा में रुचि लेते थे। कक्षा में केवल अमन ही ऐसा बच्चा था

जिसने सबसे आख़िर में पढ़ना सीखा। बाकी अधिकांश बच्चे उससे पहले पढ़ना सीख गए थे। लेकिन अमन ने पढ़ना सीखने के साथ ही कहानियों की किताबें व अन्य पुस्तकें पढ़ना जारी रखा जिससे उसकी भाषा का विकास तीव्र गति से होने लगा।

लेकिन अंग्रेज़ी विषय में इस प्रकार कोई व्यवस्था नहीं थी। अध्यापिका कार्य करवा कर बच्चों को शांत बिठा देती या हेड डाउन करवा देती। स्पैलिंग याद नहीं करने व अन्य कार्य न करने पर बच्चों को डांट और मार भी पड़ जाया करती थी। अमन की अंग्रेज़ी भाषा का विकास उस प्रकार नहीं हो रहा था, जिस प्रकार हिन्दी में हो रहा था।

अमन शैतान तो था ही साथ ही मारपीट भी बहुत करता था। उसका एक दोस्त था शिवम। दोनों में अंतर बस इतना कि अमन का वज़न 28 किलोग्राम और शिवम् का 14 किलोग्राम। दोनों अधिकतर साथ रहते लेकिन लड़ते भी बहुत थे और हमेशा शिवम् ही मार खाता था। उसका प्रिय खेल था घुड़सवारी। अमन हमेशा शिवम को घोड़ा बनाता और खुद उसके ऊपर बैठकर सवारी करता और मैं हमेशा उसे उठा देती और अमन को समझाती कि उस बच्चे के साथ कोई दूसरा खेल खेलो। लेकिन थोड़ी देर बाद उसका फिर से वही खेल चालू।

एक दिन लंच के समय में मैं कक्षा से बाहर गई ही थी कि एक बच्चा दौड़ता हुआ मेरे पास आया और कहा कि अमन ने अलमारी का कांच तोड़ दिया है। मैं वापस कक्षा में आई तो देखा कांच के टुकड़े बिखरे पड़े थे और अमन हाथ से उन्हें इकट्ठा कर रहा था। मैंने बिना कुछ कहे उसे उठाया और हाथ धोकर आने के लिए कहा। कांच साफ़ करवा दिए गए। सभी बच्चे कह रहे थे कि अमन ने ही कांच तोड़ा है। लेकिन हुआ ये था कि अमन पानी से भरी बोतल के साथ खेल रहा था और बोतल अचानक उसके हाथ से छूटकर सामने लगे कांच पर जा टकरायी और कांच टूट गया। उसने शायद जानबूझकर ऐसा नहीं किया। मेरे नहीं डांटने का उस बच्चे पर न जाने क्या असर हुआ उसने अपनी डायरी में अपने पापा को एक पत्र लिखा कि उसने कांच नहीं तोड़ा है।

दूसरे दिन अमन के पापा स्कूल आए और कहने लगे कि कांच उसने नहीं तोड़ा है। उन्हें लगा कि शायद अमन को बहुत डांट लगी है। लेकिन जब मैंने उन्हें बताया कि मैंने तो उसे कुछ भी नहीं कहा। डांटने की बात तो बिल्कुल नहीं। शायद मेरे न डांटने का ये प्रभाव पड़ा कि उसने अपनी ग़लती स्वीकार की। कांच टूटने के बाद अमन को यह लगा कि आज तो उसे मार पड़नेवाली है। लेकिन हुआ बिल्कुल अलग। शायद इसी कारण उसने अपने पापा को पत्र लिखा और उसे थोड़ा पछतावा भी हुआ कि अनजाने में ही सही उससे नुक़सान हुआ है।

कक्षा 2 तक आते-आते उसकी शैतानियां बढ़ने लगीं। अब तो वह कक्षा में भागादौड़ी करता रहता था। बैठे-बैठे गाना गाने लगता था और पूरी कक्षा भी उसके साथ गाना गाने लगती। उसकी बच्चों को मारने की आदत अभी गई नहीं थी। उसकी अध्यापिका हमेशा उसे समझाती कि दूसरे बच्चे उससे बहुत छोटे और कमज़ोर

हैं उन्हें मत मारा करो। लेकिन उस पर कोई असर नहीं होता। एक दिन उसने राजेन्द्र नामक एक बच्चे को छेड़ा तो उसने पलटकर इतनी ज़ोर से अमन को मारा कि अमन एक बार तो हक्का-बक्का रह गया। क्योंकि अभी तक तो केवल वो ही सबको मारता था। यह सब इतनी जल्दी में हुआ कि अध्यापिका समझ ही नहीं पायी कि कक्षा में क्या हुआ। बात पता लगने पर अध्यापिका को भी हंसी आ गई कि आज पहली बार अमन को पता चला कि मारने पर कितना दर्द होता है। बेचारा अमन उस दिन पूरे समय दर्द से चुपचाप बैठा रहा। उसके बाद अध्यापिका ने उसे समझाया कि जब तुम दूसरे बच्चों को मारते हो तो उन्हें भी ऐसे तकलीफ़ होती है। थोड़ी देर तो उसे समझ में आया, लेकिन दो-तीन दिन बाद अमन तो अमन ही है।

एक दिन लाइब्रेरी के पीरियड में सभी बच्चे अपनी-अपनी पसन्द की पुस्तकें पढ़ रहे थे। थोड़ी देर बार अमन मेरी टेबल पर आया उसने 'तेनालीराम' की सभी पुस्तकें उठा लीं और उन्हें अपने हाथों में ताश के पत्ते की तरह सजाया और कक्षा में घूमने लगा और आवाज़ लगाने लगा कि 'तेनालीराम डेढ़ करोड़ में।' 'तेनालीराम डेढ़ करोड़ में'। मैंने उसे अपने पास बुलाया और पूछा डेढ़ करोड़ कितने होते हैं? उसने कहा बहुत सारे। मैंने फिर पूछा अच्छा यह बताओ कि 'डेढ़' कितना होता है। इतने में दो-तीन बच्चे और आ गए, लेकिन डेढ़ की पहेली नहीं सुलझी। फिर मैंने उन्हें डेढ़ रुपया, डेढ़ रोटी, डेढ़ बजे आदि उदाहरणों से डेढ़ और अढ़ाई शब्दों को समझाया। एक बार पूरा और एक का आधा मिलकर डेढ़ बनते हैं। इसी तरह दो और आधा मिलकर अढ़ाई बनते हैं।

कक्षा लाइब्रेरी के पीरियड में मैंने जाना कि बच्चों के पास शब्द तो बहुत होते हैं लेकिन वे उनको समझते कम हैं, लेकिन पुस्तकें पढ़ने पर वे उनको धीरे-धीरे समझने लगते हैं। इसी तरह अमन भी है। उसके पास शब्द भण्डार उसकी आयु के बच्चों के मुक़ाबले अधिक है। कक्षा में भी वाक्य बनाते समय या किसी भी वस्तु के बारे में पूछते समय सबसे अच्छे शब्द या वाक्य अमन के ही होते हैं।

एक बार हिन्दी की कक्षा में अध्यापिका नामवाले शब्द (संज्ञा) सिखवा रही थी। जब अध्यापिका ने शहरों के नाम पूछे तो अधिकांश बच्चे अपने रहने के स्थान- जैसे देवाली या गांव के नाम जैसे झाड़ौल आदि बता रहे थे। किसी-किसी ने उदयपुर का भी नाम लिया। कक्षा में अमन ही ऐसा बच्चा था जिसने मुंबई, अहमदाबाद, दिल्ली जैसे बड़े शहरों के नाम फटाफट गिना दिए, लेकिन पता नहीं यही बच्चा क्यों अंग्रेज़ी की कक्षा में सबसे कमज़ोर समझा जाता। अध्यापिका उसे रोज़ डांटती तुम याद नहीं करते हो। अक्सर उसके अभिभावकों से शिकायत करती। अभिभावक भी परेशान हो कर उसे मारते। लेकिन फिर भी अमन अंग्रेज़ी भाषा में उतना अच्छा नहीं हो सका।

अमन की एक बात और थी कि वो कभी-कभी बहुत ही उग्र हो जाता था। जब कभी उसे कुछ अच्छा नहीं लगता था या उसके मन मरज़ी का नहीं होता तो उसे कुछ पता नहीं चलता कि वो अध्यापिका से बातकर रहा

है या बच्चों से। वो तो बस ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता और जो मन में आता वह कहने लगता। एक बार एक अध्यापिका के साथ भी उसने ऐसा ही व्यवहार किया। उस दिन उसे पहली बार ज़ोरदार डांट पड़ी। उसी दिन अध्यापिका ने उसके पापा के साथ बात की। उसके पापा ने बताया कि अक्सर घर पर भी वो ऐसा ही करता है। 'अकेला लड़का' होने के कारण कोई उसे कुछ नहीं कहता। इस बात का वो फ़ायदा उठाता है और अपनी दो बड़ी बहिनों को भी मारता। अध्यापिका और अभिभावक दोनों ने इस बात पर बहुत चर्चा की। अमन अभी बच्चा है इस तरह की हरकत अभी अच्छी तो लगती है लेकिन उसे नहीं रोका गया तो आगे यही बात परेशानी का कारण न बन जाए। यह वार्ता बच्चे के सामने ही हो रही थी। बच्चे के पापा ने भी माना उसकी यह आदत अभी रोकनी ही पड़ेगी। उसके बाद अभिभावक और अध्यापिका दोनों ने कई दिनों तक बच्चे की मदद की। इसके बाद शायद उस बच्चे को अपनी अध्यापिका या बड़ों के साथ अभद्र व्यवहार करते नहीं देखा गया।

अमन में एक गुण और था वो अच्छी भली शैक्षिक कक्षा की दिशा ही मोड़ देता था। एक दिन अध्यापिका कक्षा में 'विलोम' शब्द पूछ रही थी और सभी बच्चे उनका जवाब दे रहे थे, पर अचानक अमन ने गाना गाना शुरू कर दिया 'भजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है , न गाड़ी है न घोड़ा है वहां पैदल ही जाना है।' अध्यापिका को भी गाना सुनकर हंसी आ गई। फिर क्या था पूरी कक्षा में विलोम शब्द की जगह गाने की आवाज़ आने लगी। अध्यापिका मेरे पास आई और कहा मैडम मैं क्या करूं सब बच्चे गाना गा रहे हैं। मैंने कहा विलोम शब्द की जगह अंताक्षरी खेलवा लो, बच्चों का भी मन रह जायेगा और भाषा तो वे सीख ही रहे हैं, गाने के रूप में ही सही। फिर क्या था बच्चों को तो मज़ा आ गया।

यहां अगर अमन के खाने-पीने के बारे में बात न की जाय तो अमन का व्यक्तित्व अधूरा ही रहेगा। अमन जंक फूड खाने का बहुत शौक़ीन है जो उसे देखकर ही पता चल जाता है। सुबह नाश्ते में उसे एक पूरा पैकिट बिस्किट और एक गिलास दूध चाहिए। पैकिट में से एक बिस्किट भी वो अपनी बहनों को नहीं देता था। उसे पूरा ही चाहिए था। स्कूल में लंच में भी सैण्डविच, मैगी, ब्रेड, पेस्ट्री, केक आदि सामान ही अधिकतर होता या फिर पूड़ी सब्जी या कभी-कभी पराठा सब्ज़ी। खाना खाने के बाद उससे हिला भी नहीं जाता। उसकी निकर नीचे सरक जाती शर्ट के दो बटन अपने आप खुल जाते और पेट बाहर एकदम गणेशजी की तरह। दोनों पैर फैलाकर बैठता है। लंच के बादवाले कालांश में तो वो चौकी पर बैठकर लिख ही नहीं पाता था। ऐसा था उसका मस्तमौला बचपन।

रिपोर्ट

ग्राम शिविर की रिपोर्ट

★ कुमुद पुरोहित

हिंद स्वराज में गांधीजी ने डॉक्टर, वकील, और रेल व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए देश की तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और शैक्षिक परिस्थितियों पर गंभीर रूप से प्रहार किया है। इस प्रहार के साथ ही उन्होंने देश में हिन्द स्वराज और ग्राम स्वराज व्यवस्था को साकार करने की कल्पना की है। हिंद स्वराज कृति के 100 वर्ष पूरे होने पर भारत में 2009 में हिंद स्वराज शताब्दी वर्ष के रूप में मनाया गया। इसी संदर्भ में विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन के बी.एड. के छात्राध्यापकों ने गांधीजी के हिंद स्वराज कृति के संदेश को समझने और वर्तमान में गांवों की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए एक प्रायोजना के रूप में काम किया है।

विद्या भवन गोविन्द राम सेकसरिया शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर की पहल पर वर्तमान राजस्थान राज्य के विश्वविद्यालयों में बी.एड. के पाठ्यक्रम में ''वनशाला शिविर'' एक प्रवृत्ति के रूप में स्थान दिया गया। यह प्रवृत्ति विद्या भवन गोविन्दराम सेकसरिया शिक्षक महाविद्यालय में 1950 के दशक में शुरू की गई थी।

इस शिविर की गतिविधियों के माध्यम से बी.एड. के छात्राध्यापकों को न केवल शिक्षा सिद्धान्तों की गहन समझ विकसित होती है बल्कि नेतृत्व और प्रबंधन कौशल, पर्यावरणीय संवेदनशीलता एवं सहजीवन कौशलों का विकास भी संभव हो पाता है। स्थानीय परिवेश का कैसे अध्ययन किया जाए इसकी समझ की अपार संभावनाएं इसमें होती हैं।

इस कार्यक्रम के तहत 2010 के अप्रैल माह में त्रिपुरा सुन्दरी (बांसवाड़ा) में विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान, रामगिरि के बी.एड. छात्राध्यापकों का एक पांच दिवसीय शिविर लगाया गया। इस शिविर में बांसवाड़ा के एक गांव का अध्ययन किया गया जिसकी संक्षिप्त रिपोर्ट नीचे प्रस्तुत की जा रही है।

अध्ययन का चुनाव

गांधी के हिन्द स्वराज की संकल्पना के संदर्भ में आज देश और भारतीय समाज में गांधी के सिद्धान्तों और मूल्यों को किस सीमा तक व्यावहारिक रूप दिया गया और उनमें कहां–कहां अंतर आया है? हमारे ग्रामीण परिदृश्य में ग्राम स्वराज की क्या स्थिति है? इसको समझने के लिए राजस्थान के आदिवासी बाहुल्य जिले बांसवाड़ा के उमराई गांव का अध्ययन करने के लिए चयन किया गया।

अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य

1. 'हिन्द स्वराज' में वर्णित स्वराज और शिक्षा संबंधी विचारों का अध्ययन करना।
2. गांधी के ग्राम स्वराज की कल्पना के संदर्भ में इस अध्ययन में उमराई गांव का निम्न आधार

★ विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान, रामगिरि में शिक्षण करती है।

पर अध्ययन करना–

(i) वहां की प्रकृति एवं स्थानीय वातावरण
(ii) सामुदायिक जीवन
(iii) जीविकोपार्जन स्थितियां
(iv) स्थानीय स्वशासन

3. इस स्थानीय अध्ययन का कक्षा शिक्षण में अनुबंध स्थापित करने की संभावनाओं को तलाशना।
4. स्वराज की संकल्पना के संदर्भ में वस्तु स्थिति को ज्ञात करना।

अध्ययन विधि : इस अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया, जिसमें तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया और उसको प्रशासित किया गया।

अध्ययन के निष्कर्ष

– ग्रामीण अंचल में रहनेवाले निवासी गांधी को लगभग विस्मृत कर चुके हैं। नई पीढ़ी तो उनके बारे में लगभग नगण्य जानकारी रखती है।
– ग्राम स्वराज के लिए गांधी ने पर्यावरण संरक्षण को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना था किन्तु विकास की प्रक्रिया ने सुदूर अंचल में स्थित जनजाति समूहों के जीवन को दुष्कर बना दिया है।
– जहां तक जीविकोपार्जन की बात है ग्रामीण अंचल भी एक हद तक सरकार और निजी अभिकरणों पर परावलंबी होता जा रहा है। स्वरोजगार, स्वावलंबन और स्थानीय परिवेश के उद्योग लगभग समाप्त हो चुके हैं।
– स्थानीय नागरिकों को गांधी की स्वराज की संकल्पना के बारे में जानकारी नहीं है यद्यपि ग्राम पंचायत की प्रशासनिक भूमिका और कार्य प्रणाली के बारे में औपचारिक जानकारी रखते हैं। स्थानीय नागरिक स्वशासन के मूल दर्शन को नहीं जानते हैं, स्थानीय स्वशासन यांत्रिक रूप से विद्यमान है।
– आदिवासी संस्कृति में पर्यावरण के महत्व एवं उसके संरक्षण की समझ उनके मेलों, त्योहारों एवं लोकगीतों में दिखाई देती है किन्तु यहां पर्यावरण की इतनी हानि हो चुकी है कि व्यवस्थागत कारणों से इनका कोई महत्त्व दिखाई नहीं देता।
– स्थानीय नागरिकों में बालिका शिक्षा एवं सामाजिक कुरीतियों के प्रति जागरूकता बढ़ी है।
– इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि 'हिंद स्वराज' एवं 'ग्राम स्वराज' को व्यावहारिक रूप से धरातल पर खोजना आज लगभग कठिन है।

इस शिविर में छात्राध्यापकों द्वारा शिविर की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेते हुए प्रबंधकीय सहजीवन, स्वावलंबन एवं श्रम के प्रति निष्ठा आदि को समझने व सीखने का प्रयास किया गया। इस प्रायोजना में छात्राध्यापकों ने गांधीजी के हिंद स्वराज के दर्शन और उसके संदेश को समझने की कोशिश की।

ज्ञान की समझ बनाम भ्रम का निर्माण

★ पवन कुमार गुप्ता

आजकल बहुत ज़ोरों से ज्ञान के निर्माण पर बातें हो रही हैं, परन्तु ज्ञान का निर्माण तो हो नही सकता। ज्ञान तो है। हां, मान्यताओं का, भ्रम का निर्माण किया जा सकता है...। नई–नई जानकारियां भी आती रहती हैं पर ज्ञान का निर्माण नहीं होता। उसे तो सिर्फ़ समझा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है। जैसे हर वस्तु जो ऊपर जाती है वह नीचे आएगी या पानी ऊपर से नीचे की ओर बहता है या गर्म करने से चीज़ें फैलती हैं या किसी भी जगह का हाथी अफ्रीका का हो या हिंदुस्तान का शाकाहारी होता है, इत्यादि।

गांधीजी ने जिस आसुरी सभ्यता का 'हिन्द स्वराज' में ज़िक्र किया है, वह भ्रम पर, गढ़ी हुई मान्यताओं पर टिकी है और लगातार मायाजाल का निर्माण करके हमें चकाचौंध करती है। यही उसका आसुरी तत्त्व है। वह ज्ञान पर नहीं, निर्मित भ्रम और गढ़ी हुई मान्यताओं पर खड़ी होकर हमें भरमाते रहती है। यही उसकी ताक़त है। इसी को हमें देखना, समझना और अंततः उससे मुक्ति पानी है।

आज का सबसे बड़ा भ्रम 'विकास' शब्द में छिपा है। यह भंयकर रूप से आम से विशिष्ट जनों तक, सभी को भ्रमित किए हुए है। एक बात जोड़ना ज़रुरी है कि तकनीकी यंत्रों का, व्यवस्थाओं का, विषयों (भौतिकशस्त्र, रसायनशास्त्र, इतिहास, भूगोल, इत्यादि) का निर्माण होता रहता है। पर ये ज्ञान नहीं है – ये ज्ञान आधारित हो सकती हैं, ज्ञान हासिल करने में सहायक भी हो सकती हैं पर ज्ञान इन सबसे अलग वस्तु है। ज्ञान अस्तित्व में है ही, हम उसे समझें या न समझें। इसी के साथ यह कहना भी ज़रुरी है कि जिस प्रकार तकनीक, यंत्र और व्यवस्थाएं ज्ञान पर आधारित हो सकती हैं – यह भी संभव है कि वे अधकचरे ज्ञान, जिसमें भ्रम भी शामिल है, उस पर भी आधारित हो सकती है। सृष्टि के नियम शाश्वत हैं। ज्ञान शाश्वत है। स्थिति परिस्थिति बदलती रहती है। 'कैसे' को स्थिति परिस्थति तय करती है। यह 'क्या' ज्ञान का हिस्सा है। 'कैसे' को तय करते वक़्त विवेक और विज्ञान की ज़रुरत है। ज्ञान के बग़ैर विज्ञान हानिकारक भी हो सकता है।

'वस्तु', वस्तु का 'अर्थ' और 'शब्द' ये तीनों अलग–अलग हैं। इसमें स्पष्टता होनी ज़रुरी है। अस्तित्व में 'वस्तु' है, वह हमें दिखे या न दिखे। 'वस्तु' का अर्थ भी है अर्थ को समझना होता है, अनुभव करना होता है। शब्द बोलने की चीज़ है। अर्थ समझने की चीज़ है। शब्द भाषा में होते हैं, अर्थ भाषा से परे हैं। अर्थ समझने की चीज़ व अनुभव की वस्तु है। शब्द बोलने की चीज़ है। अर्थ लक्ष्य है, ज्ञान लक्ष्य है, शब्द लक्ष्य तक पहुंचने का मात्र एक माध्यम हो सकता है। आज तो शब्द और अर्थ लगभग पर्यायवाची जैसे हो गए हैं, यह भी एक भ्रम है। इस भ्रम से मुक्ति के लिए शिक्षा में भेद को

★ सिध संस्था, (एस.आई.डी.एच.) मसूरी के संस्थापक एवं कार्यकारी ।

समझना ज़रूरी है, – शब्द और अर्थ का भेद। अर्थ से शब्द की शिक्षा है शब्द से अर्थ की नहीं। लक्ष्य और माध्यम में भी गड्डमड्ड हो गया है। इन्हें भी अलग करने की ज़रूरत है। लक्ष्य स्थाई होता है, माध्यम स्थिति और परिस्थिति के मुताबिक़ लचीले होते हैं। अभी तो शिक्षा में माध्यम को निश्चित करने की कोशिश होती है और बात हम रचनात्मकता की करते हैं। किताबें माध्यम हैं, विषय माध्यम हैं पर ये दोनों ही लक्ष्य पर हावी हो गई हैं। विषय और किताबें, अर्थ को समझने के माध्यम हैं। शब्द, अर्थ पर और माध्यम, लक्ष्य पर हावी हो गई हैं। भ्रम के मायाजाल को तोड़ने के लिए, ज्ञान को उजागर करने के लिए भेद करना ज़रूरी हैं।

अभी तो ज्ञान और सूचना को भी एक ही किया जा रहा है। 'सूचना ही ज्ञान है' का भ्रम ज़ोरों से फैलाया जा रहा है। सूचना समय – सापेक्ष व ज्ञान–समय निरपेक्ष होता है। जानना और मानना के बीच एक और महत्त्वपूर्ण भेद है। बिना जाने मानना या जानकर मानना ये सर्वथा अलग बातें हैं।

आधुनिक शिक्षा मनुष्य में एक तरह का अहंकार भरती है कि वह जानता है। परन्तु अक्सर पढ़ा लिखा व्यक्ति बिना जाने मानता है और भ्रम में रहता है कि वह जानता है। हम स्कूलों में पढ़ाते हैं कि सूरज पूरब से निकलता है या पूरब से उगता है। सोचकर देखें तो इस प्रकार की शिक्षण विधि खुद मान्यता से ग्रसित है। पढ़ाया इस प्रकार जाना चाहिए '' सूरज जिस दिशा से उगता प्रतीत होता है उस दिशा को हम पूरब कहते हैं''।

सभ्यता का एक बड़ा हथियार आधुनिक विज्ञान है। जिसे जिस तरह पढ़ाया जा रहा है, उससे जानने और मानने का भेद धूमिल होता है। पढ़े–लिखे लोग बिना जाने मानते हैं, पर भ्रम में रहते हैं कि हम जानते हैं। अनपढ़ भी बहुत मानते हैं पर उनसे पूछा जाए कि तुम इसको मानते हो, या जानते हो? तो वे कहेंगे कि मानते हैं। यह जानना कि मैं मान रहा हूं, उतना बुरा नहीं जितना कि मैं मानते हुए भी इस भ्रम में रहूं कि मैं जानता हूं। विज्ञान की पढ़ाई अमूमन इस भ्रम को बढ़ाकर अहंकार दे रही है। कोई भी अवधारणा क्यों है, इसका उत्तर एक से अधिक हो सकते हैं। लेकिन पढ़े–लिखे आदमी का दिमाग़ इस प्रकार बना दिया गया है कि उसको अगर कोई एक उत्तर थोड़ा बहुत भी समझ में आ जाए तो वह मान लेता है कि मैं जान गया। बात इससे भी आगे जाती है अगर कोई प्रभावशाली व्यक्ति, कोई बड़ा वैज्ञानिक, कोई बड़ा अर्थशास्त्री या कोई बड़ा अख़बार किसी बात को कह देते हैं तो आम आदमी उसे इस प्रकार ग्रहण करता है जैसे कि वह जान गया हो।

हमारा पारम्परिक ज्ञान तर्क पर आधारित नहीं है या यूं कहें कि उनके तर्क अलग हैं। लगभग 10–12 वर्ष पूर्व 'जनसत्ता' में मार्च माह में एक ख़बर छपी कि मालवा के किसान बहुत ख़ुश हैं, क्योंकि उनको लगता है कि उनके इलाके में अच्छी बारिश होगी। वहां चार साल से अच्छी बारिश नहीं हुई थी। वहां अकाल था। उनको ऐसा इसलिए लगा क्योंकि उन्होंने देखा कि कौओं ने पेड़ के बीचवाले हिस्से में घोंसला बनाया है। आमतौर पर कौए मार्च के माह में घोंसला बनाते हैं। और जब कौआ बहुत उंचे पेड़ की शाखाओं में घोंसला बनाता है तो लोग यह मानते हैं कि बारिश नहीं होगी। जब बीच में घोंसला बनाते हैं तो लोग यह मानते हैं कि इस बार बारिश होगी। मुझे यह ख़बर रुचिकर लगी और वो ख़बर मैंने काटकर रख ली और सोचा कि देखें इस बार क्या होता है। बारिश के दिनों में पता चला कि मालवा इलाक़े में अच्छी बारिश हुई। इसी तरह से

मेरी पारम्परिक ज्ञान में रुचि बढ़ी। इस प्रकार के ज्ञान पंरम्परा में 'क्यों' का महत्त्व नहीं है 'क्या' का महत्त्व है।

परन्तु आधुनिक पढ़ाई लिखाई में 'क्यों' का अधिमूल्य किया गया है और साथ ही 'क्या' का अवमूल्य हो गया है। 'क्यों' का जवाब भले ही अधूरा हो पर हमने मान लिया कि यह सम्पूर्ण जवाब है, इस पर सतर्क होने की ज़रूरत है। अवलोकन करना, सुनना, और सुनने का अर्थ केवल कानों से सुनना नहीं बल्कि जो बोला जा रहा है उसके पीछे का अर्थ क्या को समझना है। इन सबकी अक्सर आधुनिक शिक्षा में अवहेलना होती है अवलोकन करना और देखकर, सुनकर, समझना इन पर ज़ोर देने की जरूरत है।

होना और लगना इन दोनों में भी भेद है। जो कुछ लगता है क्या वो है? भ्रम यह हो गया है कि जो अच्छा लगता है वो अच्छा होता है। जो अच्छा लगता है वो अच्छा नहीं भी हो सकता है। दोनों में भेद है – जैसे खाने की कोई अटपटी चीज़ अच्छी लग सकती है पर शरीर के लिए संभव है कि वह अच्छी न हो। विकास क्या है? आजकल 'विकास' शब्द दुनिया के हर इलाक़े के छोटे से छोटे बच्चे की ज़ुबान पर चढ़ गया है। 'विकास' शब्द का आज से साठ वर्ष पूर्व प्रयोग नहीं होता था। शारीरिक विकास, मानसिक विकास, भावनात्मक विकास, आर्थिक विकास इस दृष्टि से इस तरह 'विकास' शब्द का इस्तेमाल होता था। मैं आजकल बड़ी बारीक़ी से यह देखने की चेष्टा करता हूं क्या उन्होंने विकास शब्द का इस मायने में इस्तेमाल किया, जिस मायने में आज होने लगा है? नहीं किया! मैं यहां तक कहूंगा कि देश–विदेश के किसी भी व्यक्ति ने 1949 के पहले विकास शब्द का इस प्रकार इस्तेमाल नहीं किया। इस प्रकार जो होने लगा, इससे भ्रम फैला, विकास और पिछड़ापन एक भूत की तरह हमारे दिमाग़ में बस गया है। मेरे गांव में सड़क, बिजली, पीने का पानी नहीं है, यह एक सच्चाई है। लेकिन मैं पिछड़ा हुआ हूं, यह भ्रम है, यह भ्रम जानबूझकर फैलाया जा रहा है ताकि दुनिया एक ही रास्ते पर चले। इस तरह के रास्ते पर पीछे चलने से हमेशा ही नक़ल होती है। हम रचनात्मकता, मौलिकता की बात करेंगे लेकिन हमारी मौलिकता तो कहीं और ही चली जाएगी और पूरी ऊर्जा नक़ल करने में ही लगेगी। हमने यह भी भ्रम फैला रखा है कि अस्तित्व में मानव निर्मित वस्तुएं भी होती हैं। ग़ौर से देखें तो मानव मूलरूप से किसी भी चीज़ का निर्माण नहीं कर सकता। सिर्फ़ रूप का परिवर्तन कर सकता है। प्लास्टिक को कम्प्यूटर का आकार, लोहे को पंखे का आकार दे सकता है लेकिन लोहा नहीं बना सकता है। पदार्थावस्था प्रकृति में है। उसमें विकास है ही नहीं उसमें वृद्धि नहीं है। परन्तु आज हम इस परिर्वतन को ही विकास का नाम दे रहे हैं, यह भी एक भ्रम है।

असल विकास तो उसे कहना चाहिए जहां मनुष्य सही मायने में स्वतंत्र रह सके। जिन चीज़ों की उसके जीवन में आवश्यकता है उन पर उसका अधिकार हो। अभी तो हम अधिक से अधिक परतंत्र हैं और उसे ही हम आज़ादी मानते हैं। व्यक्ति उत्पादन से जितना दूर उतना विकसित होगा। आज के ज़माने में इस प्रकार के भ्रमों का निर्माण होते रहता है।

एक्सपेरिमेन्ट विद ट्रूथ

★ कमल महेन्द्रू

विद्या भवन के द्वारा आयोजित 3–5 नवम्बर 2009 के सेमीनार में बुनियादी तालीम और ज्ञान निर्माण के सिद्धान्त के मुद्दे पर हुई चर्चा में कमल महेन्द्रू ने गांधीजी के एक्सपरिमेन्ट विद ट्रूथ के संदर्भ में शिक्षा में ज्ञान के निर्माण और विज्ञान की प्रकृति और प्रवृत्ति की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इस व्याख्या में उन्होंने विज्ञान में खोजी प्रवृति को मुख्य मानते हुए शाश्वत सत्य या ज्ञान को लगातार रूप से परखने और उसे जांचते रहने पर बल दिया और कहा कि आज शाश्वत सत्य का कोई भी दावा नहीं कर सकता।

मैंने अपने काम के जीवन की शुरुआत 'किशोर भारती' के साथ होशंगाबाद ज़िले में की थी। मज़ेदार बात यह रही कि जो बातें हम मानकर चल रहे थे हमें वहां जाकर क्या करना है, उस पर काफ़ी सवाल खड़े हो गए। पिछले 30–35 वर्ष का समय उन सवालों को समझने, उनको गहरा करने और उनके क्या सम्भव अर्थ हो सकते हैं, को खोजने और समझने में ही बीता। हमने अपने काम की शुरुआत यह मानकर की थी कि गांधीजी की बुनियादी शिक्षा में ग्रामीण शिक्षा के दिशा–निर्देश हों। उनके अनुसार पूरे पाठ्यक्रम का निर्माण हम करना चाहते थे। उस समय देश में बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में जो प्रयोग चल रहे थे, उनसे सीखने की हमने कोशिश की थी। किन्तु हमें पहला झटका यह लगा कि बुनियादी शिक्षा और सामान्य शिक्षा की जो शाला प्रणाली थी उनमें कोई विशेष भेद हमें नज़र नहीं आया। इसलिए यह सवाल उठा कि सिद्धान्त में कहां गड़बड़ हुई है? समझने में गड़बड़ हुई है या सिद्धान्त की बुनियाद में कुछ ऐसा था कि उसके कारण हमारी बुनियादी शालाओं में वैसी ही शिक्षा प्रणाली मिलती है जो साधारण स्कूलों में। तो एक विरोधाभास पैदा हो गया। हम सोच कुछ और रहे थे और हो कुछ और गया। मुझे लगता है कि पिछले 5–10 वर्षों में चली निर्माणवाद की प्रक्रिया में हमको गहराई से थोड़ा सोचना होगा कि सिद्धान्त हम क्या लेकर चल रहे थे और जो हमारा वास्तविक ठोस स्वरूप व अभ्यास है उसमें कहां पर अंतर आ जाता है? मुझे लग रहा है कि कुछ बुनियादी सिद्धान्त और शब्दों की समझ, अवधारणाओं की समझ अगर उसको हम अपने बीच में साफ़ कर लें, तब अभ्यास की विवेचना करना ज़्यादा सार्थक एवं सम्भव होगा।

एक रोचक बात मुझे यह लगी कि गांधीजी की

★ विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत। विद्या भवन में आयोजित बुनियादी शिक्षा : आगे कैसे बढ़े? में दिए गए व्याख्यान का संपादित भाग।

आत्मकथा ''माई एक्सपेरीमेन्ट्स विद ट्रूथ'' में इन दो शब्दों ने मुझे स्ट्राइक किया। ये दोनों विज्ञान की विचारधारा के आधार भी हैं। कई लोगों को मैंने यह कहते सुना था कि गांधीजी विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के पक्ष में नहीं थे। पर जब मैंने थोड़ा पढ़ने की कोशिश की तो समझ में आया कि मॉर्डन साईंस और टेक्नोलॉजी की तो उन्होंने काफ़ी आलोचना की परन्तु विज्ञान को एक खोजी प्रवृति के रूप में, विज्ञान अपने आस–पास की प्रकृति, आपसी संबंधों, पूरी मानव सभ्यता को समझने के प्रयास के रूप में उन्होंने काफ़ी प्रमुख माना और यह भी कहा कि हमारी शिक्षा का प्रमुख हिस्सा होना चाहिए। विज्ञान की समझ क्या है और उसके आधार पर शिक्षा की समझ क्या है? उस पर हम थोड़ा विचार करें और फिर आगे बढ़ें।

मेरी समझ में विज्ञान के आस–पास की आधुनिक टेक्नोलॉजी की चकाचौंध विज्ञान नहीं है और न ही विज्ञान एक पका पकाया ज्ञान का बंडल है जो हमें अपने विद्यार्थियों को देना है। कई सारे सिद्धान्त, नियम, वैज्ञानिकों के नाम, व्याख्याएं हमें अपनी किताबों में लिखनी हैं और वे बच्चों को सिखानी हैं। वास्तव में यह विज्ञान तो नहीं है। विज्ञान वास्तव में ज्ञान का पूरी मानव सभ्यता का प्रयास है पर यह कहना काफ़ी नहीं होगा क्योंकि तुरन्त इससे जो प्रश्न पैदा होता है वह यह है कि हम कैसे तय करेंगे कि किसी भी कथन को हम ज्ञान या सत्य की श्रेणी मे डालना चाहेंगे या नहीं डालना चाहेंगे। कोई भी कथन हम दें या देना चाहें, कहीं पढ़ें या कोई हमको कथन दे तो पहला सवाल यह उठता है कि यह कथन वास्तव में सही है या नहीं। इसके सत्यापन का वचन हम कैसे दें? जैसे कई पीढ़ियों तक मानव सभ्यता यह मानती आई थी कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड का पिंड है और सूर्य, चन्द्रमा व तारे पृथ्वी का चक्कर काटते हैं। तो ऐसा कथन उस समय के दर्शनशास्त्र, साहित्य और सबका आधार था। अब कहीं पर यह सवाल उठाना कि यह तथ्य कहां से आया? इसकी सत्यता कैसे स्थापित हुई? ऐसे कथनों की जांच की बुनियाद में विज्ञान का विकास है। विज्ञान यह नहीं कि यह कथन सही है वह कथन सही नहीं है।

विज्ञान वास्तव में एक तरीक़ा है। सवाल इस बात का एक जो भी कथन हम दे रहे हैं उसकी सत्यता की जांच कैसे करें। जांच के तरीक़ों का विकास करना और उन जांच के तरीक़ों की भी जांच–परख करते रहना और कब हमारे तरीक़े कारगर हैं कब नहीं हैं, किस पारिस्थिति में कौन से तरीक़े कारगर होंगे, यह वास्तव में विज्ञान की बुनियाद है। हम कोई भी वैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत करें और कहें कि यह वैज्ञानिक है तो हमारे लिए यह बहुत ज़रूरी हो जाता है इस बात को प्रस्तुत करना कि आख़िर इसकी जांच कैसे की, इस तथ्य तक हम कैसे पहुंचे। यह मेरी समझ में विज्ञान की बुनियाद है। जो तरीक़ा है विज्ञान का या जो पूरे ज्ञान के निर्माण का, इसके दो पहलू हैं। एक, तो उसके अभ्यास का है। उसमें सबसे पहली बात प्रयोग की आती है जिसको गांधीजी ने भी किया। किस चीज़ को हम प्रयोग कहेंगे और किस तरह से हमने प्रयोग करने के तरीक़ों में इज़ाफ़ा किया है। शुरुआती प्रयोग वे थे जो हम अपनी आंखों से देख पाते थे। परन्तु धीरे धीरे पूरी मानव सभ्यता के विकास में ऐसे उपकरण ईजाद किए गए जो हमारी आंखें नहीं देख पाती थीं। उससे ज़्यादा हम उन्हें देख पाएं। इन अवलोकनों को विशुद्ध बनाना, अवलोकनों को और आगे बढ़ाना अपनी मानवीय सीमाओं से अवलोकन क्षमताओं को आगे बढ़ाना एक महत्त्वपूर्ण पहलू था।

प्रयोग जो हम कर रहे हैं उसकी विश्वसनीयता

कैसे स्थापित की जाए कि बार–बार उसे किया जा सके, एक से अधिक बार किया जा सके। अवलोकन करना, अवलोकन से आंकड़े इकट्ठे करना, आंकड़ों को व्यवस्थित करना, उन्हें व्यवस्थित करके प्रस्तुत करना और उस आधार पर विश्लेषण करना अहम है। विश्लेषण करने में गणित की प्रमुख भूमिका होती है। यह तो बने विज्ञान के अभ्यास के तरीक़े। अब हमें यह सोचना है कि हम यह बच्चों को कितने अच्छे तरीक़े से व कितनी गहराई से और क्षमताओं के साथ सिखा सकते हैं। साथ ही वे उनकी सीमाओं को भी पहचानें, यह हम कितना कर पाते हैं? विश्लेषण के तरीक़े में समूह बनाना, वर्गीकरण करना, तर्क का इस्तेमाल करते हुए जिन परिस्थितियों के बारे में हम पक्के नहीं हैं वहां पर सत्य और सम्भाविता के सिद्धान्तों का इस्तेमाल करते हुए परिकल्पना करना, जो तथ्य हैं उसकी सही या ग़लत होने की जांच करना और उसके सही होने की सम्भावना की भी बात विज्ञान में है। विज्ञान सीखने का यह तरीक़ा भी बहुत ज़रूरी बन गया है। यह तो पहलू है विज्ञान में ज्ञान के निर्माण का।

दूसरा, महत्त्वपूर्ण पहलू है विज्ञान में ज्ञान के निर्माण का, एक पूरी अवधारणाओं का ढांचा, एक पूरे सिद्धान्तों और परिकल्पनाओं का ढांचा। कई मॉडल हम बनाते हैं जिसमें वास्तविक परिस्थिति सम्भवतया हो सकती है और उसकी व्याख्या करने के लिए कि पृथ्वी, सूरज और तारामंडल का क्या सम्बन्ध है? उसकी परिकल्पना प्रस्तुत करना विज्ञान है। रोचक बात यह है कि कॉपरनिकस या गैलीलियो या अन्य वैज्ञानिकों ने जिस सौर मंडल के मॉडल की परिकल्पना बारीक़ी से प्रस्तुत की कि इतने अंश पर त्रिकोण पर पृथ्वी झुकी हुई है और इस तरह का उसका परिक्रमा पथ है इत्यादि। इस तरह के अवलोकन पृथ्वी की सतह पर रहते हुए कई वर्षों तक किए गए। अवलोकन के विश्लेषण से ऐसी परिकल्पना प्रस्तुत की गई थी। जिन्स, क्रोमोसोम का, शरीर के विकास में या अन्य प्रजातियों के विकास में, विकास का अपना मॉडल है। अणु, परमाणु का अपना एक मॉडल है। विज्ञान का एक बहुत ज़रूरी पहलू है, ऐसी अवधारणाओं का विकास करना जो इन अवधारणाओं के आधार पर अपनी परिकल्पनाओं की पुष्टि कर सके। कब इन परिकल्पनाओं को सिद्धान्त का दर्जा देते हैं और इन सिद्धान्तों के आधार पर जो मॉडल उभरता है, उस मॉडल की व्याख्या करना और यह यक़ीन करना कि जो मॉडल हम विकसित कर रहे हैं, सम्भवतया प्रकृति उस मॉडल के अनुसार काम करती है। रोचक बात यह है कि हमारी अवधारणाओं की शुरुआत सामने देखने से होती है। पर बहुत जल्दी ही विज्ञान में ऐसी अवधारणाएं भी आ जाती हैं जिनका कोई रूप मूर्त में अस्तित्व में नहीं है। अमूर्त अस्तित्व की अवधारणाएं भी विज्ञान में उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि मूर्त अवधारणा, जो हमारे प्रत्यक्ष अवलोकनों पर निर्भर हैं। विज्ञान में यदि बल की अवधारणा है तो कई ऐसी अमूर्त अवधारणाएं प्रस्तावित करते हुए विज्ञान में ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया आगे बढ़ती है। यह समझना आवश्यक है कि इन अवधारणाओं का विकास कैसे हुआ है। कई लोगों के सामूहिक बौद्धिक प्रयास से ऐसी अवधारणाएं उभरकर आई हैं और एक अवधारणा के विकास के पीछे कई चरण रहे हैं।

यह जो सारा संचित ढांचा है वह उतना ही ज़रूरी है जितना विज्ञान की प्रायोगिक, तार्किक विधि को अपनाने का। क्योंकि आपका तर्क आपकी अवधारणा की व्याख्या पर निर्भर करता है। ये दोनों पहलू विज्ञान शिक्षा के बहुत ज़रूरी पहलू हैं। बात को संक्षिप्त करते हुए मेरे अनुसार मूल बात यह है कि

जब हम यह कहने लगते हैं कि हमारी शिक्षा का उद्देश्य बच्चों में ज्ञान निर्माण की क्षमता पैदा करना है या जो निर्माणवाद का सिद्धान्त है वह क्या हो? उसमें दोनों पक्षों को अलग करके देखना बहुत ज़रूरी है। एक पक्ष यह समझने की कोशिश कर रहा है कि निर्माणवाद किसी भी विद्यार्थी के सीखने की प्रक्रिया के बारे में क्या कह रहा है। बच्चा उसको तभी सीखेगा जब वह उस ज्ञान को अपने लिए, अपने संदर्भों में अपनी मानसिक क्षमताओं व मानसिक रूपों के रूप में उसे पुनः गढ़ेगा और उसको अपने साथ करेगा। हमारी शिक्षा प्रणाली, शिक्षकों, पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यचर्या को इसके प्रति सचेत होना पड़ेगा कि बच्चा अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करेगा। ज़ाहिर है यहां पर ज्ञान की व्याख्या थोड़ी अलग तरह से की जा रही है। उस परिस्थिति से जहां हम ज्ञान को पूरी मानव सभ्यता का संचित अनुभव, संचित जानकारी, प्रकृति, इतिहास, आपसी संबंधों के बारे में, उसको अगर हम कहें कि यह जानते हो तो वहां पर निर्माणवाद की व्याख्या में कुछ अड़चनें आने लगती हैं। क्योंकि आज की पीढ़ी के बच्चों को पहले की पीढ़ियों का संचित ज्ञान और आज का ज्ञान प्राप्त करना है और उसको समझना है। इसको समझना इसलिए आवश्यक है क्योंकि हर पिछली पीढ़ी ने जो संचित ज्ञान दिया है उसको और आगे बढ़ाना है। आगे बढ़ाने की प्रक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि हमें पिछली पीढ़ियों से क्या ज्ञान मिला है, उसको हम समझें और उस ज्ञान के विकास को भी समझें। उसको सत्य की श्रेणी में शामिल किया जा सकता है या नहीं, उसके मापदण्ड क्या होंगे।

विज्ञान में ट्रूथ की अवधारणा क्या है? अगर आज आप विज्ञान के किसी भी दर्शनशास्त्री या वैज्ञानिक से पूछें तो वे कहेंगे कि आज हम जिसको सत्य मान रहे हैं, अभी की जानकारी, सिद्धान्त के अनुरूप वह आज का सत्य है। परन्तु यह शाश्वत है इसका दावा आज कोई नहीं कर सकता। कल नए अवलोकन, नए प्रयोग होंगे, नई जानकारियां मिलेंगी, वे आज के सिद्धान्त जिस पर आज का सत्य आधारित है, उसमें किस तरह के परिवर्तन करने का आधार तय करेंगी, वो आज हम नहीं कह सकते। शाश्वत ज्ञान की अवधारणा विज्ञान में अब स्थापित नहीं मानी जाती। आज का सत्य आज की हमारी जानकारी, सिद्धान्तों के आधार पर है। हर सत्य को आगे बदला जा सकता है। जब हम कहते हैं कि हमारी शिक्षा का उद्देश्य बच्चों में ज्ञान के निर्माण की क्षमता पैदा करना है तो ज्ञान की प्रकृति और ज्ञान निर्माण के तरीक़ों को हमें शिक्षा में शामिल करना आवश्यक है। आम आदमी, किसान, कारीगर, लगातार रोज़मर्रा के काम से, अनुभव से उनकी समझ व उनके आधार पर ज्ञान निर्माण की क्षमता पैदा करना निर्माणवाद व बुनियादी शिक्षा के लिए इस सिद्धान्त की व्याख्या पर विचार करना ज़रूरी है।

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

★ भाग चन्द्र कुमावत

महात्मा गांधी ने शिक्षा को एक ऐसे माध्यम के रूप में देखा था, जो देश की सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अन्याय, हिंसा व असमानता के प्रति देश की अंतरात्मा को जगा सके। 'नयी तालीम' ने देश की आत्मनिर्भरता के साथ–साथ व्यक्ति के आत्म–सम्मान पर जोर दिया था। अहिंसा उसका मूलमंत्र था। गांधीजी ने ऐसे भारत का सपना देखा था जिसमें प्रत्येक बालक अपनी योग्यता व संभावनाओं की तलाश कर सके और दूसरों के साथ मिलकर विश्व के पुनर्निर्माण के लिए काम कर सके।

सन् 1937 में गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा अर्थात् नई तालीम की योजना प्रस्तावित की थी। इस योजना की मुख्य विशेषता है– शिक्षा का माध्यम बच्चों की स्वभाषा हो। स्कूली शिक्षा का अनुबन्ध स्थानीय उद्यम, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश तथा प्राकृतिक परिवेश से हो। बच्चे के बौद्धिक या ज्ञानात्मक विकास का आधार कोई न कोई उत्पादक उद्यम हो। बच्चों की श्रम के प्रति निष्ठा हो। स्कूली शिक्षा में

★ विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान रामगिरि, उदयपुर में काम कर रहे हैं।

उनमें स्वतंत्र रूप से आजिविका चलाने की क्षमता का विकास हो। आपस में सहकार और शांति के साथ रहना। शिक्षा के द्वारा बच्चों को स्वावलंबी जीवन का अभ्यास देना ताकि वे विद्यालयी शिक्षा के दौरान कोई न कोई काम (उद्यम) सीखकर आगे जाकर समुदाय की अर्थव्यवस्था में हिस्सेदार बन सकें। बुनियादी शिक्षा का मूल सिद्धान्त है कि शिक्षा में बच्चे के हाथ, दिमाग़ और दिल तीनों की भागीदारी हो, तीनों में समन्वय हो। बच्चे को स्कूल में यदि हाथों से कुछ कार्य करने, कुछ रचने या निर्माण करने के अवसर मिलते हैं तो उसमें हस्तकौशलों का विकास होगा। बच्चे के पास सोचने के लिए दिमाग़ है। जब बच्चा अपने हाथों से कार्य करेगा तो उसमें उसके बारे में सोचने की प्रक्रिया तो चलेगी ही। जब वह किसी चीज़ का निर्माण करेगा तो स्वाभाविक रूप से उसका, उसके साथ भावनात्मक जुड़ाव तो होगा ही। इस तरह से बुनियादी शिक्षा बच्चे के दिल, दिमाग़ और हाथों को जोड़ती है। उद्यम के कामों में बच्चों के समूह में काम करने से उनमें सहकार, सहयोग, शांति के भाव का निर्माण होता है। मेहनत करने से उनको नैतिक मूल्यों की सीख भी सही अर्थों में मिलती है। गांधीजी के इस शिक्षा योजना के प्रस्ताव को स्वीकार कर इसे राष्ट्रीय प्रारम्भिक शिक्षा नीति के रूप में देश के कई हिस्सों में लागू किया गया था।

राजस्थान में गांधीजी के बुनियादी तालीम की इस अनूठी योजना से प्रेरित होकर विद्या भवन संस्थान ने 1941 में रामगिरि गांव में विद्या भवन बुनियादी मदरसे की स्थापना की थी। यह राजस्थान का पहला गांधीवादी बुनियादी मदरसा था। यह मदरसा तत्कालीन देश के गिने–चुने बुनियादी मदरसों में गिना जाता था। इस बुनियादी मदरसे के बाद विद्या भवन ने देश के बुनियादी शिक्षा के विद्यालयों के लिए क्राफ़्ट शिक्षक तैयार करने के उद्देश्य से 1943 में विद्या भवन कला संस्थान (क्राफ़्ट इन्स्टीट्यूट) की स्थापना की थी। इस कला संस्थान में शिक्षकों को लेदर क्राफ़्ट, पेपर मेसी, सिलाई, वुड वर्क, मूर्तिकला, आयरन वर्क, बुनाई करना आदि क्राफ़्ट का प्रशिक्षण दिया जाता था। बाद में यह संस्थान राजस्थान की प्राथमिक शिक्षा की पाठशालाओं के लिए क्राफ़्ट के प्रशिक्षित शिक्षक तैयार करने लगा था। किन्तु 1998 में यह संस्थान किन्हीं कारणों की वज़ह से बंद हो गया। 2003 में इस संस्थान में बी. एस.टी.सी. (बेसिक स्कूल टीचिंग कोर्स) का पाठ्यक्रम शुरू किया गया, जिसमें प्राथमिक पाठशालाओं के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। यह वर्तमान में भी कार्यरत है। गांधीजी के सामुदायिकता, सहकार एवं ग्राम विकास की संकल्पना की दिशा में डॉ. के.एल. श्रीमाली की ग्राम विद्यापीठ योजना के तहत विद्या भवन ने 1956 में विद्या भवन रूरल इन्स्टीट्यूट की स्थापना की थी। इस रूरल इन्स्टीट्यूट के तीन विभाग थे– एक, आर.एस.डी विभाग (ग्रामीण सेवा का डिप्लोमा) जिसमें गांवों के नवयुवकों को उच्च शिक्षा के रूप में सहकारिता, सामुदायिकता और ग्राम विकास का प्रशिक्षण दिया जाता था। दूसरा, सिविल इन्जीनियरिंग विभाग जिसमें गांवों के नव निर्माण के लिए नौजवानों को भवन निर्माण आदि का प्रशिक्षण दिया जाता था। और तीसरा, स्वास्थ्य व सेनीटेशन विभाग जो गांवों के सामुदायिक स्वास्थ्य के संदर्भ में गांवों के नवयुवकों को प्रशिक्षण देता था। लेकिन रूरल इन्स्टीट्यूट का वह स्वरूप अब काफी बदल गया है। वर्तमान में यह मुख्यधारा की उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए एक केन्द्र के रूप में काम कर रहा है। लेकिन इस केन्द्र के संदर्भ में हमारा यह प्रयास रहता है कि हम रूरल इन्स्टीट्यूट के स्थापना की मूल भावना से जुड़े रहें और ग्रामीण

एवं सामान्य जन के जीवन व उसके दर्शन को शामिल रखें। परन्तु यह काम कठिन है और यह अधिक कठिन होता जा रहा है। क्योंकि ज्ञान समाज से दूर होता जा रहा है। वर्तमान में रूरल इन्स्टीट्यूट में ग्रामीण समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। इसी तरह व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत बी.बी.एम. व कम्प्यूटर साइन्स की स्नातक डिग्री का कोर्स चलाया जा रहा है। इसके एक विभाग पॉलिटेक्निक संस्थान में सिविल इन्जीनियरिंग, इलेक्ट्रीकल इन्जी, इलोक्ट्रोनिक्स इन्जी. एवं कम्प्यूटर साइन्स इंजीनियरिंग के डिप्लोमा कोर्स चलाए जा रहे हैं। इस संस्थान में गांवों और शहरों के बेरोजगार नवयुवकों के कौशलों के विकास के लिए तीन और छह मास अवधि का सामुदायिक प्राद्यौगिकी कार्यक्रम (सी.पी.डब्लू) चलाया जाता है, जिसमें गांवों एवं शहरों के बेरोजगार नवयुवकों को सुथारी, सिलाई, रेफ्रीजरेटर रिपेयरिंग, साफ़्ट टॉयज मेकिंग, मोबाइल रिपयेरिंग, बिजली का काम, मेसनरी व सेनिटेशन आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी तरह कृषि विज्ञान केन्द्र पर उदयपुर जिले के पांच विकास खण्डों यथा– बड़गांव, गिर्वा, खेरवाड़ा, कोटड़ा और गोगुन्दा के गांवों के पुरुष और महिला किसानों को कृषि, डेयरी, मुर्गीपालन, बकरीपालन आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस तरह हम रूरल इन्स्टीट्यूट की मूल भावना को हर संभव तरीक़े से जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं। इन्हें आगे बढ़ाने, व्यवस्थित करने और इन पर शोध करके नये रास्ते खोजने की जरूरत है।

विद्या भवन बेसिक स्कूल में बुनियादी शिक्षा पर प्रयोग

विद्या भवन के संस्थापक एवं शिक्षाविद् डॉ. मोहन सिंह मेहता और डा. के. एल. श्रीमाली ने बुनियादी तालीम के शिक्षा दर्शन से प्रभावित हो कर उस पर प्रयोग करने की दृष्टि से 1941 में विद्या भवन बुनियादी मदरसे की स्थापना की थी। इस मदरसे का उद्घाटन 23 अप्रैल 1941 को भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन (उस समय वे राष्ट्रपति नहीं थे) द्वारा किया गया था। प्रमुख शिक्षाविद एवं गांधीवादी विचारक स्व. दयालचन्द्र सोनी इस मदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक थे। मदरसे के शुरुआत के कुछ वर्षों में स्व. दयाल चन्द्र सोनी ने गांधीजी की बुनियादी तालीम के विचार पर काफ़ी चिन्तन मनन करके उसके आधार पर मदरसे में बुनियादी शिक्षा का ढांचा तैयार किया। इस कोशिश में सोनीजी के नेतृत्व में शिक्षकों के द्वारा मदरसे का कक्षावार पाठ्यक्रम तैयार किया गया। मदरसे में बच्चों के लिए कताई–बुनाई व रंगाई, सुथारी और कृषि उद्योग की व्यवस्था की गई। मदरसे में स्वावलम्बन, सहकार, श्रम आदि की स्थापना के लिए दैनिक नियोजित सेवा का कार्यक्रम शुरू किया गया, जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर मदरसे की साफ़–सफ़ाई, पानी भरना, शौचालयों की सफ़ाई करना, प्राथमिक चिकित्सा, कताई, कोठार संचालित करना, स्टेशनरी आदि के लिए खुली सहकारी दूकान चलाना, घंटी लगाना, गंदे आए विद्यार्थियों को नहलाना–धुलाना, बाल पुस्तकालय चलाना आदि काम करते थे। विभिन्न स्तर की कक्षाओं की पाठ्यसामग्री जो कि शिक्षकों के द्वारा तैयार की गई थी उसका उद्योग के कामों के साथ अनुबन्ध करने का प्रयास किया गया। अर्थात् पढ़ने–पढ़ाने का काम किया गया। इस प्रकार स्व. दयाल चन्द्र सोनी और उनकी शिक्षकों की टीम ने बुनियादी तालीम के विभिन्न आयामों पर कई गहन प्रयोग किए और उनका स्वरूप निर्धारित किया था। किन्तु कई वर्षों बाद बुनियादी मदरसे में स्थापित बुनियादी तालीम का यह स्वरूप और उसके कार्यक्रम जड़वत् और

रूढ़िगत हो गए।

मदरसे के स्वावलम्बन का सवाल

जैसा कि बुनियादी तालीम की योजना में यह सोचा गया था और अपेक्षा की गई थी कि बच्चों के द्वारा स्कूल में किए जानेवाले उद्यमों से स्कूल स्वावलम्बी बन सकेगा और स्कूल में काम करनेवाले शिक्षकों के वेतन आदि का खर्चा भी निकल पाएगा। लेकिन विद्या भवन बेसिक स्कूल में शुरू से अब तक ऐसा संभव नहीं हो पाया। यद्यपि मदरसे में शिक्षक और विद्यार्थी अपने दैनिक कामकाज में आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी बन पाए। इस मदरसे की स्वावलम्बन व परिश्रम की दृष्टि से एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी कि मदरसे में चलनेवाले उद्योगों के अन्तर्गत वर्षभर बच्चों के द्वारा किए जानेवाले कार्य व परिश्रम का वर्ष के अन्त में उस उद्योग विशेष में कक्षा को मिलनेवाले लाभ को उस कक्षा के बच्चे के प्रगति–पत्र में उल्लेख किया जाता था कि इस वर्ष बच्चे के हिस्से में कितनी कमाई आयी है। इस प्रकार हर वर्ष उद्योग में होनेवाले लाभ की राशि (कमाई) जुड़ती जाती थी। जब बच्चा अन्त में आठवीं कक्षा का पाठ्यक्रम पूरा कर लेता, तो उस वर्ष सत्रान्त कार्यक्रम में उसके अभिभावक की उपस्थिति में उसके द्वारा गत सात–आठ वर्षों में प्राप्त किए गए कुल लाभ की राशि के समतुल्य उसे, बच्चों के द्वारा उद्योगों में उत्पादित सामग्री जैसे– टेबल, कुर्सी, डेस्क, दरी, टावेल, आसन, कपड़ा आदि उपहार में दिए जाते थे जो कि उनके मेहनत की कमाई होती थी। यद्यपि इस कमाई से बच्चे की पढ़ाई का खर्चा तो नहीं निकल पाता था जैसा कि बुनियादी शिक्षा की योजना में सोचा गया था। किन्तु फिर भी इस मदरसे से निकलनेवाला बच्चा अपने आगे के जीवन में इस मेहनत के उपहार को सदैव याद रखता। उसका आत्मविश्वास बढ़ता। उसमें स्वावलम्बन और उत्पादक कार्य करने का बीजारोपण होता था। विद्या भवन बेसिक स्कूल के बुनियादी शिक्षा का यह स्वरूप 1941 से 1986 तक लगभग 45 वर्ष तक बना रहा।

बुनियादी शिक्षा एक नई कोशिश

1987 में यह बुनियादी मदरसा आठवीं कक्षा से दसवीं तक में क्रमोन्नत हो गया और इसमें राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम लागू कर दिया गया। इससे इस मदरसे में बुनियादी शिक्षा के ढांचे के अन्तर्गत जो उद्योग, गतिविधियां और कार्यक्रम संचालित हो रहे थे वे सब शिथिल हो गए। यह स्थिति 1987 से 1996 तक बनी रही। 1997 में विद्या भवन सोसायटी के प्रबन्धकों और शिक्षा शास्त्रियों ने बुनियादी मदरसे में बुनियादी शिक्षा के जड़ हो चुके इस ढांचे में स्फूर्ति फूंकने, उसमें गतिशीलता लाने के साथ–साथ बुनियादी तालीम के विचार को आज के संदर्भ में समझने व उसे पुनः अपनाने की दृष्टि से 'बुनियादी शिक्षा एक नई कोशिश' नाम से एक कार्यक्रम प्रारम्भ किया।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत शुरू की कुछ अवधि में बुनियादी तालीम के विचार को समाज की बदली हुई आज की परिस्थितियों और ज़रूरतों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया। काम केन्द्रित शिक्षा की अवधारणा को समझने की कोशिश की गई। गांधीजी के बुनियादी तालीम के विचार पर फिर से मन्थन किया गया। इसके बाद विद्या भवन बेसिक स्कूल में पारम्परिक कताई–बुनाई उद्योग की जगह आज के संदर्भ में हाथ के कामों यथा–खाद्य प्रसंस्करण, घरेलू विद्युत् उपकरण मरम्मत व रख–रखाव, सिलाई, बागवानी, कम्प्यूटर शिक्षा, मेसनरी वर्क, वुड वर्क, टू व्हीलर रिपेयरिंग, हस्तनिर्मित काग़ज़ बनाना आदि काम (उद्योग) शुरू किए गए। धीरे–धीरे इन हाथों के कामों का कक्षावार पाठ्यक्रम तैयार किया गया। हाथ के कामों को सीखने–सिखाने के बारे में

सिलाई, खाद्य प्रसंस्करण, वुड वर्क और बागवानी की कार्य पुस्तकें तैयार की गई है। साथ ही हर एक उद्योग के काम की एक्टीविटी शीट्स भी बनाई गई। बुनियादी तालीम के समवाय (अनुबन्ध) के सिद्धान्त पर काम करके उसे समझा गया। बच्चों को सीखने–सिखाने के संदर्भ में स्थानीय सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व भौगोलिक परिवेश का शिक्षा के साथ अनुबंध करने की दिशा में स्कूल के बच्चों को कक्षा के बाहर सीखने के अवसरों की शुरुआत की गई। इस शुरुआत में स्कूल के आस–पास स्थित गांवों में बच्चों के शिविर लगाए जाने लगे। इन शिविरों में बच्चे (कक्षा छह से दस तक के) गांव के सामाजिक व भौगोलिक परिवेश, वनस्पति, ईंधन, पानी, स्वास्थ्य, काम–धन्धे, शिक्षा आदि के विभिन्न मसलों पर अध्ययन करते हैं और उन्हें समझने की कोशिश करते हैं। इसी तरह छोटे दर्जे के उत्पादक उद्यमों की प्रकृति व प्रक्रिया को जानने व समझने के लिए बच्चों की आस–पास के उद्योग केन्द्रों की विजिट का कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है।

अर्थपूर्ण विद्यालयी शिक्षा : बुनियादी शिक्षा एक अर्थपूर्ण विद्यालयी शिक्षा की संकल्पना है। जब हम बच्चों के लिए अथपूर्ण विद्यालयी शिक्षा की बात करते हैं तो हमारे समाने शिक्षा का एक दर्शन है और वह है बुनियादी शिक्षा। आज़ादी के बाद से और बहुत सारे लोगों के प्रयासों के बाजवूद इसको उस स्वरूप में नहीं ला पाए हैं जिस स्वरूप में यह सभी स्कूलों के लिए संभव बन सके। अब तक बुनियादी शिक्षा को अपनाने को लेकर देशभर में किस प्रकार से कार्य किया गया? वे क्या कारण हैं कि बुनियादी शिक्षा मुख्यधारा की शिक्षा नहीं बन पाई? इन सब सवालों पर विमर्श की प्रक्रिया से हमें बुनियादी शिक्षा की खूबियों और सीमाओं को पहचानने का अवसर मिला है। साथ ही बुनियादी शिक्षा को आज के संदर्भ में पुनर्भाषीकरण करने में कुछ हद तक हम आगे बढ़े हैं।

जैसा कि गांधीजी ने इस बात को काफ़ी ज़ोर देकर कहा था कि पाठ्यपुस्तकें बच्चों के सीखने में बाधक होती हैं। इस लिहाज़ से बेसिक स्कूल में एक ओर बच्चों को हाथों से कुछ रचने या निर्माण करने के अवसर दिए जाते हैं वहीं दूसरी ओर उन्हें कक्षागत पुस्तकालय के माध्यम से सीखने–सिखाने की ऐसी सहायक पाठ्य सामग्री तथा वर्क बुक, एक्टीविटी शीट्स आदि दी जाती है जो उनको रुचिकर लगे और जिनके ज़रिए वे पढ़ना लिखना सीखें और साथ ही समाज और दुनिया के साथ जुड़ सकें। इससे बच्चों की पढ़ने–लिखने के प्रति दिलचस्पी और क्षमता तो बढ़ी ही है साथ ही उनकी शैक्षिक अवधारणों की समझ भी बन रही है। उनकी भाषा, गणित व पर्यावरण अध्ययन आदि की दक्षता बढ़ रही है। इस कक्षागत पुस्तकालय की अवधारणा को हमने राजस्थान की दो डाइट्स (जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान) के साथ भी बांटा है।

गांधीवादी शिक्षा अध्ययन संस्थान

विद्या भवन ने पिछले कुछ वर्षों से आज के संदर्भ में बुनियादी तालीम के विचार को स्कूली शिक्षा में पुनः अपनाने का प्रयास शुरू किया था। इस प्रयास में विद्या भवन ने यह अनुभव किया कि जब तक बुनियादी तालीम से परिचित शिक्षक उपलब्ध नहीं होंगे तब तक हम इस विचार का स्कूली शिक्षा में व्यापीकरण कैसे कर पाएंगे और आगे कैसे बढ़ेंगे? गांधी शिक्षा विचार की व्यापकता व प्रासंगिकता को देखते हुए और समझते हुए विद्या भवन ने नवम्बर 2008 में विद्या भवन बेसिक स्कूल के परिसर में 'गांधीवादी शिक्षा अध्ययन संस्थान' की स्थापना की। इस संस्थान का उद्घाटन प्रसिद्ध गांदीवादी

विचारक एवं गांधी कथावाचक श्री नारायणभाई देसाई ने किया। इस संस्थान के अन्तर्गत पांच युनिट हैं। यथा– शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बेसिक स्कूल, क्राफ़्ट युनिट, शोध और गांधी पुस्तकालय। पिछले दो वर्षों में गांधी शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालय ने 200 छात्राध्यापकों को बुनियादी शिक्षा का प्रशिक्षण दिया है। अभी यह प्रशिक्षण महाविद्यालय अपने अनुभव के दौर से गुज़र रहा है। विद्या भवन बेसिक स्कूल प्रशिक्षण प्राप्त करनेवाले छात्राध्यापकों के लिए एक प्रयोगशाला के रूप में काम कर रहा है। वर्तमान में यह संस्थान अपने ढांचे के निर्माण की प्रक्रिया से गुज़र रहा है।

बुनियादी शिक्षा में निर्माणवाद

बुनियादी शिक्षा में कार्य को स्कूल में केंद्रीय स्थान क्यों दिया गया, इस बात को निर्माणवादी दृष्टिकोण से हमने समझने का प्रयास किया। निर्माणवादी दायरे में बच्चा ख़ुद ज्ञान का निर्माण करता है। इसका अर्थ यह होता है कि ज्ञान के निर्माण के लिए बच्चे को ख़ुद अपने हाथों से कार्य करना होगा। यह प्रक्रिया बच्चे के शरीर की विभिन्न इंद्रियों को भी सक्रिय रहने के अवसर देती है। बच्चा अपने स्तर पर कुछ रचे और उस रचने के दौरान वह जिन प्रक्रियाओं से गुज़रे उनसे ज्ञान का अर्जन करे। यदि बच्चे को कुछ रचने का अवसर दिया जाता है तो रटंत शिक्षा से छुट्टी पाई जा सकती है। हम बच्चों को ज्ञान का निर्माता मानें। रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में सीखना ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया है। पूछताछ, अन्वेषण, विश्लेषण, प्रश्न पूछना, चर्चा करना, व्यावहारिक प्रयोग करना व ऐसा चिंतन करना कि जिससे सिद्धान्त बन सकें और विचार/स्थितियों की रचना हो सके। ये सभी बच्चों की सक्रियता को सुनिश्चित करते हैं। इस लिहाज़ से बच्चों को ऐसे अवसर दिए जा रहे हैं जिसमें वे ख़ुद कुछ काम करके देखें, समझें और आपस में चर्चा एवं चिंतन कर शैक्षिक अवधारणाओं को आत्मसात् करें। अपने परिवेश के साथ अंतःक्रिया करके ही एक बच्चा ज्ञान सृजित करता है और अपने जीवन में सार्थकता पाता है। बुनियादी शिक्षा को प्रासंगिक बनाने का अर्थ यही है कि सीखने को बच्चे के परिवेश से जोड़ा जाए। हम इस दिशा में लगातार कोशिश कर रहे हैं।

विद्या भवन के प्रयास

बुनियादी तालीम को आज के संदर्भ में समझने और उसे अपनाने की दिशा में विद्या भवन माध्यमिक बेसिक स्कूल पिछले 13 वर्षों से अपने प्रयास जारी रखे हुए है। इस प्रयास में विद्या भवन बेसिक स्कूल ने अपने आप को बुनियादी शिक्षा संदर्भ केन्द्र के रूप में स्थापित किया है। बुनियादी शिक्षा के विचार और उसके आयामों को गहराई से समझने, सीखने तथा इस विचार के व्यापीकरण की दृष्टि से बुनियादी तालीम पर कतिपय राष्ट्रीय कार्यशालाएं एवं सेमीनार का आयोजन भी किया गया। शिक्षा के विचारों के आदान–प्रदान व बुनियादी शिक्षा के इस विमर्श को आगे बढ़ाने के लिए 'बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश' तथा 'खोजबीन' नामक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी किया जा रहा है। इन पत्रिकाओं में अर्थपूर्ण शिक्षा से जुड़े मुद्दों को उठाया जा रहा है। उन पर विमर्श किया जा रहा है। विद्या भवन बुनियादी शिक्षा संदर्भ केन्द्र ने बुनियादी तालीम के सशक्तीकरण, व्यापीकरण और इसे जन सामान्य की शिक्षा के रूप में स्थापित करने के लिए एक राष्ट्रीय मंच बनाने की भी पहल की है।

यह केन्द्र विद्या भवन माध्यमिक बेसिक स्कूल के आस–पास के लगभग 30 सरकारी और ग़ैरसरकारी विद्यालयों में बुनियादी तालीम के विचार और उसके सिद्धान्तों को ले गया है। इसके साथ ही बुनियादी

शिक्षा संदर्भ केन्द्र पर हर वर्ष एक माह अवधि का ग्रीष्मकालीन शिविर लगाया जाता है। इस शिविर में बेसिक स्कूल के आस–पास स्थित सरकारी और ग़ैरसरकारी स्कूलों के विद्यार्थियों (लड़के–लड़कियों) को हाथ से काम–सिलाई, सुथारी, घरेलू विद्युत उपकरण मरम्मत, हस्तनिर्मित कागज बनाने, खाद्य प्रसंस्करण, बागवानी, टू व्हीलर रिपयेरिंग आदि के काम सिखाए जाते हैं। साथ ही उन्हें 'बुनियादी शिक्षा' का एक्सपोजर भी दिया जाता है। इसके अलावा यह केन्द्र शिक्षक शिक्षा के तीन बी.एड. महाविद्यालयों और राजस्थान की पांच, छत्तीसगढ़ की एक तथा बिहार की दो डाइट्स (ज़िला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान) में आज के संदर्भ में बुनियादी तालीम के विचार को भी ले गया है। इसी तरह छत्तीसगढ़ राज्य में स्कूली शिक्षा में बुनियादी तालीम के तत्त्वों को शामिल करने के उद्देश्य से राज्य शिक्षा नीति निर्माण के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त तैयार करने और उसकी रूपरेखा बनाने में छत्तीसगढ़ की एस.सी.ई.आर.टी. के साथ विद्या भवन बुनियादी शिक्षा संदर्भ की महत्त्वपूर्ण भागीदारी रही है।

इस प्रकार बुनियादी शिक्षा एक नई कोशिश कार्यक्रम के माध्यम से बुनियादी शिक्षा को आज के संदर्भ में समझने, अपनाने एवं उसे पुनः स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। इस कोशिश में कई अड़चनों का सामना करना पड़ रहा है। सर्वप्रथम तो शिक्षा जगत् के मुख्यधारा के लोग 'बुनियादी तालीम' का नाम सुनते ही चौंकते हैं और प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं कि अरे यह विचार तो आज़ादी के बाद फ़ेल हो गया। ऐसा लगता है कि उन्हें बुनियादी शिक्षा के इस लेबल से चिड हो गई है। लेकिन जब उनके सामने अर्थपूर्ण और गुणात्मक शिक्षा के रूप में इसके सिद्धान्तों और काम से ज्ञान के निर्माण की अवधारणा को प्रस्तुत किया जाता है और उनके साथ चर्चा और विमर्श किया जाता है तो वे सहमत होते है कि शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से यह शिक्षा पद्धति बहुत श्रेष्ठ एवं अर्थपूर्ण है। किन्तु वे मत प्रकट करते हैं कि इसकी सब बातों को आम सामान्य विद्यालयों में लागू करना संभव नहीं है। वहां ऐसे हाथ के कामों को करने की कोई गुंजाइश नहीं है। यद्यपि इस विचार की तारीफ़ शिक्षा से जुड़े सब लोग करते हैं। इन अड़चनों के बावजूद भी हमें इसे सब स्कूलों के लिए संभव बनाने के लिए हमारे प्रयास जारी रखना होगा।

गुजरात में शिक्षा : एक नज़रिया

★ ज्योतिभाई देसाई

बुनियादी शिक्षा की शुरुआत गुजरात से ही मानी जाती है। अतः गुजरात में बुनियादी शिक्षा को लेकर किस प्रकार की सोच रही है इसका जायजा ले रहे हैं एक जाने–माने शिक्षक ज्योतिभाई देसाई।

गुजरात में शिक्षा में काम करते हुए मैं 60 वर्ष बिता चूका हूं। अपने काम का मूल्यांकन करते हुए जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं तो समझ में आता है कि मैंने शिक्षा को ही काम का लक्ष्य क्यों चुना। पहले मैं गुजरात राज्य के गठन के पूर्व ग्रामीण गुजरात की शैक्षिक संस्थाओं के हालतों के संदर्भ में अपने अनुभव प्रस्तुत करूंगा।

मैंने गुजरात में 1950 में काम शुरू किया । शुरुआत में अध्यापक के रूप में मैंने एक प्राथमिक स्कूल में पांचवीं कक्षा के बच्चों को पढ़ाना प्रारम्भ किया। यह स्कूल अहमदाबाद से क़रीब 52 मील दूर एक गांव में गांधीवादी समूह के द्वारा संचालित किया जाता था। बात 1950 के नवम्बर की है। इस स्कूल में जिला शिक्षा विभाग के एक निरीक्षक महोदय स्कूल का निरीक्षण करने आए। निरीक्षण में उन्होंने पाया कि मैं बच्चों को तथाकथित कमरे में बिठाकर पढ़ाने के बजाए फ़र्क़ ढंग से पढ़ाते हुए पाया गया। असल में मैंने शिक्षा विभाग द्वारा तय अभ्यास शिक्षण का अनुसरण नहीं किया था। उनके निरीक्षण के दौरान मेरी कक्षा के बच्चे कक्षा के बाहर अलग–अलग समूह में निर्धारित कार्य करने में मशगूल थे। उन्होंने मेरे इस तरीक़े में बदलाव के लिए कहा। किन्तु मैंने बच्चों के साथ काम करने के इस तरीक़े को बदलने से उन्हें इंकार कर दिया। मेरे इस बर्ताव से उनका क्रोध उग्र हो गया। उन्होंने क्रोधित होकर आश्रम के मुखिया से कहा कि शिक्षा के बारे में विचित्र संकल्पना रखनेवाले इस ढीठ शिक्षक को स्कूल से जब तक तुम नहीं हटाओगे तब तक तुम्हारे स्कूल की ग्रान्ट बंद कर दी जाएगी। इसकी जानकारी आश्रम के मुखिया ने मुझे दी। इस पर मैंने हमारे संस्था के मुखिया नवलभाई से कहा कि यह आपकी समस्या है। आपको तय करना है मुझे स्कूल में रखना है या नहीं। मेरी कोई समस्या नहीं है। मैं इस संस्था को छोड़कर, अपना झोली–झण्डा उठाकर अन्य किसी संस्था में काम कर लूंगा। लेकिन नवलभाई शाह जो कि 1975 में गुजरात राज्य के शिक्षा मंत्री बने, उन्होंने मुझे स्कूल में ही रखना तय किया। इस संदर्भ में मैं यहां उल्लेख करना चाहता हूं कि इस वाक़िए के बाद इस स्कूल की लगभग 20 माह की बाक़ी चल रही ग्रान्ट का पैसा सरकार के द्वारा इस स्कूल को चुकाया गया। तब यह संभव

था क्योंकि उस समय हमारा केन्द्र आस–पास के 45 गांवों में सकारात्मक सेवा उपलब्ध कराने के लिए पहचाना जाता था। यह गुजरात में संभव था जैसा कि गुजरात समाज में स्वस्थ एवं रचनात्मक कार्य करनेवाले स्वैच्छिक संगठनों को तरज़ीह दी जाती थी।

1960 में, मैं गुजरात की गांधीवादी सम्मानजनक संस्था 'लोक भारती' उच्च शिक्षा संस्थान से जुड़ा। भारत सरकार की ग्रामीण विद्यापीठ संस्थान की स्कीम के तहत हमारे यहां एक विभाग था। इस विभाग के अन्तर्गत कृषि पर दो वर्षीय डिप्लोमा कोर्स चलता था। इस कोर्स की समीक्षा करने के लिए केन्द्र सरकार की ओर से एक अधिकारी लोक भारतीय संस्था में आया। इस अधिकारी ने यहां इस कोर्स को गुजराती भाषा के माध्यम से पढ़ाए जाने पर ऐतराज़ उठाया और उसे बंद कर देने के लिए हमें कहा। संस्थान के संस्थापक नानाभाई भट्ट ने केन्द्र सरकार के अधिकारी की बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने एकाउन्टेन्ट से पूछा कि इस कार्यक्रम के लिए हमें भारत सरकार से कितना पैसा मिलता है। एकाउन्टेन्ट ने बताया कि लगभग एक लाख रूपए मिलते हैं। तब इस बात पर उस अधिकारी को नानाभाई ने एक लाख रुपए राशि का एक चेक हाथ में थमाते हुए यह कहा कि ''मेरे दोस्त! शिक्षा कैसे दी जाए इसका रास्ता हमने ख़ुद चुना है। हम पढ़ाने के माध्यम के सवाल पर कोई समझौता नहीं कर सकते। हम 'गुजराती' जो कि यहां के लोगों की मातृभाषा है को ही पढ़ाने के माध्यम के रूप में सदैव इस्तेमाल करेंगे।'

केन्द्र सरकार के इस अधिकारी के इस बर्ताव का पता जब भारत सरकार के शिक्षा मंत्री श्री के.एल. श्रीमाली को चला तो वे तुरन्त दिल्ली से भावनगर जिले के सणोसरा गांव में आए और उन्होंने नानाभाई से कहा 'आदरणीय नानाभाई, भारत सरकार की ओर से मैं स्वयं और भारत सरकार, लोक भारती और आपका सम्मान करते हैं। आप और आपकी संस्था ग्रामीण शिक्षा के विकास में हमारी मदद कर रहे हैं। मातृभाषा में पढ़ाने के आपके निर्णय का हम स्वागत करते हैं। कृपया हमारे अधिकारी की ग़लतफ़हमी की वजह से आपको जो असुविधा हुई उसके लिए हमें क्षमा करें।'

1970 के दशक में, मैं सूरत जिले के वेड़छी गांव में स्थित गांधी विद्यापीठ में आ गया। वेड़छी एक जनजाति गांव है जिसमें 1967 में 'गांधी विद्यापीठ' की स्थापना की गई थी। इस संस्थान का उद्घाटन तात्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन ने किया था। इस संस्थान के संस्थापक प्रसिद्ध गांधीवादी श्री जुगतराम दवे ने मुझे इस संस्थान में 'ग्रेजुएट बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज' को विकसित करने की ज़िम्मेदारी सौंपी। इस कार्य में, मैंने व्यापीकृत समाज की ज़रूरतों को पूरा करने की दृष्टि से उपयुक्त पाठ्यक्रम की रचना करने और नियम आदि बनाने की पूरी छूट प्राप्त की थी। इस कार्य में, मैंने इस कॉलेज में प्रवेश के नियम व मापदण्ड शिथिल ही रखने में विशेषतौर से उन युवकों के लिए जो ठेठ दूर के गांवों से आते हैं और जापी नदी पर ऊकई बांध बन जाने से जो गांव विस्थापित हो गए थे वहां से आनेवाले नौजवानों के प्रवेश को प्राथमिकता दी थी। बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कार्यक्रम की एक विशेषता यह थी कि कॉलेज में पढ़नेवाले नौजवानों को भारत में किसी भी स्थान पर आई प्राकृतिक अथवा मानवीकृत आपदाओं से निपटने के लिए की जा रही कोशिशों में भाग लेना होता था। इस प्रकार के कार्यक्रम के तहत हम उत्तरी बिहार के 'मुशहरी' क्षेत्र में गए जहां जयप्रकाश नारायण नक्सलवादियों के आमने–सामने होकर शांति की

स्थापना में लगे थे। इसी तरह हमारे कॉलेज के नौजवानों ने सूरत और जयपुर में आई बाढ़, कर्नाटक के प्रदूषण विरोधी अभियान में लगे सक्रिय कार्यकत्ताओं के साथ, मध्य प्रदेश में डाकुओं को सामाजिक रूप से स्वीकृत सामान्य नागरिक के रूप में वापस समाज में लौटने में मदद करने में हिस्सा लिया। इन डाकुओं ने 1970 में स्वैच्छिक रूप से जयप्रकाश नारायण के समक्ष आत्मसमर्पण किया था। 1971 में हमने पूर्वी पाकिस्तान से आए लाखों शरणार्थियों की मदद करने का काम भी किया था।

गुजरात के समाज का ज़बर्दस्त समर्थन मिलने से यह सब संभव हो सका। एक बेहतर समाज की रचना करने में इस प्रकार की शिक्षा को एक सशक्त माध्यम के रूप में देखा गया। इसीलिए भारत की तात्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी वेड़छी आई। उन्होंने वेड़छी में गांधी विद्यापीठ के शिक्षा के प्रयासों को मान्यता प्रदान करते हुए शिक्षक–शिक्षा के स्नातकों को प्रमाण–पत्र प्रदान किए।

'जीवन पर्यन्त शिक्षा' के दृष्टिकोण के संदर्भ में 1984 में यूनेस्को ने 'शिक्षक शिक्षा' के विकास पर 'बहुराष्ट्रीय अध्ययन' के संबंध में एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी। इस रिपोर्ट में वेड़छी व लोक भारती के प्रयासों को सम्मिलित करते हुए आस्ट्रेलिया, फ्रांस और फिलीपीन्स की संस्थाओं को भी शामिल किया था। इस रिपोर्ट में भारतीय केस स्टडी के संदर्भ में निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय है–

गांधी विद्यापीठ वेड़छी के शिक्षक–शिक्षा का कार्यक्रम एवं पाठ्यक्रम, जिसमें सिद्धान्त और अभ्यास के कार्य, प्रशिक्षण विधि और मूल्यांकन की पद्धति समग्रता लिए हुए आपस में ऐसे घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान को प्राप्त करने के रूप में सम्पूर्णता के साथ अनुभव आधारित जीने का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। पाठ्यक्रम में किए जा रहे नवाचार, शिक्षण के अभ्यास का विश्लेषण और प्रशिक्षण की विधि का मूल्यांकन कोई भी कर सकता है। इसके अलावा जहां तक विभिन्न दायरों का संबंध है इसके सारे अभ्यास बढ़िया तरीक़े से आपस में गुंथे हुए हैं। वास्तव में इन नवाचार के अभ्यासों के आपस में तालमेल से गांधी विद्यापीठ का शिक्षा कार्यक्रम प्रमुख रूप में उभरकर सामने आया है, जो शिक्षक की पूर्ण तैयारी के रूप में दिखता है। साथ ही सभी प्रकार के नवाचार को शामिल करने के संदर्भ में दृष्टिगत होता है।

'भारतीय केस अध्ययन' में जिस पद्धति का उल्लेख किया है उसमें विद्यार्थी शुरूआत से ही एक ''शिक्षक की भूमिका में रहता है और उसे जीता है''। एक निश्चित अवधि तक स्कूल को कार्य करते हुए देखना, छात्राध्यापकों के कार्य अनुभव को शामिल करते हुए विद्यार्थी एक निश्चित अवधि तक इन्टर्नशीप प्रारम्भ करता है। स्कूल के नियमित शिक्षकों की तरह प्रशिक्षण प्राप्त करनेवाला विद्यार्थी स्कूल की सभी गतिविधियों में शामिल रहता है। गांधी विद्यापीठ के सिद्धान्त कुछ इस प्रकार हैं– छात्राध्यापक इसमें विश्वास नहीं करता कि उसे बच्चों को सिखाना है और बच्चों को सीखना है। उसके लिए कक्षा में पढ़ाने का मतलब कक्षा के सामने एक समस्या प्रस्तुत करना है। यह समस्या हल करने का उपागम बच्चों को स्वयं सीखने, समूह में सीखने और बच्चों के आपस में सीखने को प्रेरित करता है। शिक्षण का अभ्यास सामाजिक सेवा करने और खेती से संबंधित अभ्यास के लिए भी होता है।

हालांकि केस स्टडी की एकीकृत रिपोर्ट में जो बात ख़ासतौर पर कही गई है वह है गांधी विद्यापीठ के पाठ्यक्रम का समस्या आधारित होना। इस संदर्भ में मेरा यह कहना है कि यूनेस्को के द्वारा

इस तथ्य को जानना संभव हो पाया था, क्योंकि यहां के कर्त्ताधर्ता जैसे नानाभाई, जुगतरामभाई, मूलशंकरभाई आदि के द्वारा ''जीवन द्वारा जीवन की शिक्षा'' अर्थात् जीवन्त शिक्षा के नमूने को प्रतिपादित किया गया था और उसमें उन्होंने अपना योगदान दिया था।

यह विडंबना ही है कि 1990 के दशक में गुजरात में नई तालीम का ग्राफ नीचे आता गया। क्योंकि गुजरात सरकार के ''मान्यता और सहारे'' ने नई तालीम के स्कूलों को जकड़ लिया था। 1964 के वर्ष में नई तालीम के नेताओं ने, नई तालीम के स्कूलों को गुजरात राज्य के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के स्कूलों के समकक्ष मानने और उनके साथ संलग्न करने की मांग की। ऐसी अवस्था में शासन द्वारा संचालित नई तालीम की स्कूलों में असरकारी काम कैसे संभव हो सकता है।

2000 के वर्ष में गुजरात राज्य सरकार ने तय किया कि स्कूल या संस्था में किसको नौकरी पर रखेंगे, उसे कितना वेतन देंगे और क्या और कैसे पढ़ाया जाएगा। राज्य सरकार चाहती थी कि शैक्षिक संकाय के सदस्यों की संख्या में कमी की जाए। गुजरात सरकार ने बुनियादी तालीम के स्कूलों से सेवा निवृत होनेवाले अध्यापकों की जगह भरने की सुविधा भी बंद कर दी। नई तालीम के क्षेत्र में काम करने पर एक तरह से रोक लगा दी गई। सरकार के द्वारा विश्वविद्यालयों और उनके उपकुलपतियों को राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की सुविधा की दृष्टि से उन्हें नियंत्रित कर दिया गया है। राज्य अधिकारपूर्वक अपनी मनमर्ज़ी के आधार पर शिक्षा के सभी स्तरों पर पेरा टीचर्स को कम तनख़्वाह (दैनिक मज़दूर के पारिश्रमिक से भी कम) पर नियुक्त कर उन्हें वेतन चुकाने लगा।

कोई भी बच्चा या छात्र माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर रहा होता है, अगर उसे उच्च अध्ययन करना है तो उसे बोर्ड की अंग्रेज़ी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए बाध्य किया जाता है। दूसरी ओर इसके विपरीत राज्य सरकार मातृभाषा 'गुजराती' को बचाने की मुहिम चलाती है। हां, अब राज्य सरकार ख़ुद जानती है कि गुजरात के बच्चों और नौजवानों के लिए क्या उत्तम है, उनको क्या और कैसे पढ़ाया जाए। सरकार की मंशा ऐसी लगती है कि सीखने को भूल जाओ।

गुजरात की शिक्षा के बारे में यह मेरा व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। सच कहूं तो मैंने अपने जीवन को समझने और सीखने के लिए समर्पित करने का निर्णय लिया था।

★ अनुवाद : **भाग चन्द्र कुमावत,** बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश के संपादन प्रक्रिया में सलंग्न।

विज्ञान शिक्षण पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार
का
दस्तावेज़

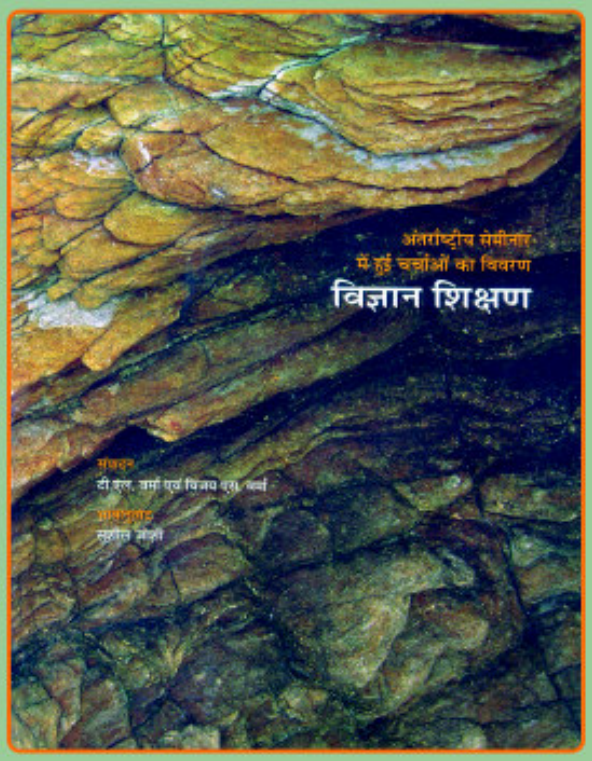

(अब हिन्दी में भी उपलब्ध)

संपर्क करें

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

बोझ तले बचपन

वि.वि.सिंह

कहां गई रंग–बिरंगी तितलियां,

नहीं सुनाता कोई परियों की कहानियां,

वह बारिश में भीगना, परिन्दों को निहारना,

पेड़ों पर चढ़ना, कैरी–इमली तोड़ना।

आसमान में रंग–बिरंगी पतंगें उड़ाना,

साथियों के संग नदी–पोखर में नहाना,

चांद तारों से अपना नाता जोड़ना,

कभी आकाश तक उड़ने का दम भरना।

बचपन के सपने कहीं खो गए हैं,

पढ़ाई का भार, परीक्षाओं का भय,

कहीं पीछे रह जाने का डर,

बचपन आज बोझ तले दबा है।।